नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचार पत्र • वर्ष 3 अंक 3
अप्रैल 2001 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

आयात-निर्यात नीति 2001-2002

वाजपेयी सरकार ने मेहनतकश जनता को विनाश की और गहरी खाई में धकेला

(सम्पादक)

लखनऊ। केन्द्रीय आम बजट 2001-2002 के बाद देशी-विदेशी मुनाफाखोरों की वफादारी का सिलसिला आगे बढ़ाते हुए वाजपेयी सरकार ने आयात-निर्यात नीति 2001-2002 के जरिये उनकी मुराद पूरी कर दी है। पिछले 31 मार्च को आयात-निर्यात नीति की घोषणा करते हुए वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री मुरासोली मारन ने देश के बाज़ार को सभी विदेशी मालों के लिए खुला कर दिया है और निर्यात बढ़ाने के नाम पर मेहनतकश जनता के खून की आखिरी बूंद तक निचोड़ लेने के नये मौके मुहैया करा दिये हैं।

- विदेशी अनाज, फल और सब्जियां, दूध और दूध से बने सामानों से लेकर चाय-कॉफी, बिस्कुट, कपड़े आदि ज़रूरत की सभी चीज़ों के लिए घरेलू बाज़ार खुला
- निर्यात बढ़ाने के नाम पर मज़दूरों के सस्ते श्रम को निचोड़ने की खुली छूट
- छोटे-मंझोले उद्योग और परम्परागत पेशों की तबाही का रास्ता खुला
- छंटनी-तालाबन्दी-बेकारी का अभूतपूर्व सिलसिला शुरू होगा

नरसिंह राव सरकार के कार्यकाल में विश्व व्यापार संगठन से किये गये वायदे को निभाने में वाजपेयी सरकार ने जो मुस्तैदी दिखायी है उसने "स्वदेशी" और "राष्ट्रवाद" के चीथड़े को भी हवा में उड़ा दिया है। देश के बड़े पूंजीपतियों की रजामन्दी से कांग्रेस सरकार ने विश्व व्यापार संगठन के समझौते पर दस्तखत कर यह वायदा किया था कि वर्ष 2003 तक 1429 वस्तुओं के आयात पर से वह सारी पाबन्दियां हटा देगी। लेकिन तय मियाद से दो साल पहले ही वाजपेयी सरकार ने यह कर दिया। पिछले साल 714 वस्तुओं पर से मात्रात्मक प्रतिबन्ध (कोटा) हटा लिया गया था और इस बार बची 715 वस्तुओं के आयात की सारी बन्दिशें उठा ली गयी हैं।

बजट की तरह ही देश के चोटी के मुनाफाखोर आयात-निर्यात नीति के लिए वाजपेयी सरकार और वाणिज्य मंत्री को शाबासियां दे रहे हैं। विदेशी आयातित मालों से घरेलू बाज़ार पट जाने के बाद इनसे होड़ में वे कितना टिक पायेंगे इसको लेकर वे थोड़ा चिहुंके हुए ज़रूर हैं लेकिन देश की मेहनतकश जनता के सस्ते श्रम पर अपना पहला हक होने के चलते. वे इस बूते होड़ में टिकने का मंसूबा बांधते हुए खुद को तसल्ली भी दे रहे हैं। दरअसल, साम्राज्यवादी भूमण्डलीकरण के इस दौर में विश्व पूंजीवादी लूटतंत्र के छुटभैया साझीदार के रूप में अपनी औकात को समझते हुए उन्होंने नफा-नुकसान का पूरा हिसाब लगाकर ही सरकार में बैठे अपने मैनेजरों को हरी झंडी दिखायी थी कि वे विश्व व्यापार संगठन के समझौते पर दस्तखत कर लें।

देश के बड़े पूंजीपति इस सच्चाई को बखूबी जानते हैं कि विश्व व्यापार संगठन मुख्यत: साम्राज्यवादी पूंजी के हितों की हिमायती संस्था है और उसमें शामिल होना उनके लिए कई मायने में नुकसानदेह भी है, लेकिन न शामिल होना और भी नुकसानदेह होता। सारा आगा-पीछा सोचते हुए उन्होंने घरेलू और विदेशी बाज़ारों में विदेशी पूंजी के साथ होड़ में उतरने का फैसला लिया है। उसे इस बात का एक हद तक भरोसा है कि विश्व बाज़ार के कुछ सेक्टर ऐसे

(पेज 10 पर जारी)

भ्रष्टाचार को मिटाने के लिए पूंजीवादी लूट के निजाम को मिटाना होगा

अरविन्द सिंह

तहलका डॉट कॉम भंडाफोड़ से लड़खड़ा गयी वाजपेयी सरकार को संघ परिवार के मीडिया मैनेजरों ने फिलहाल संभाल लिया है। अब राष्ट्रीय अखबारों के पहले पन्ने पर रक्षा सौदों में दलाली खाने की सनसनीखेज कहानी और बंगारू लक्ष्मण, जार्ज फर्नांडीज और वाजपेयी के खिसियाए-झंवाए चेहरों की जगह "तहलका मामले की पूरी ईमानदारी से जांच करने" और राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन की रैलियों के फोटो छप रहे हैं। उधर, विज्ञापन न मिलने से जी टी.वी. चैनल का तहलका सीरियल भी फुसफुसा गया।

बेमिसाल नंगई और बेहयाई के साथ तरह-तरह के झूठों के दिन-रात प्रसारण से भ्रष्टाचार की कालिख को धो देने की संघ परिवार की यह हमलावार रणनीति कामयाब न होने पाती अगर देश के सभी बड़े पूंजीपति वाजपेयी सरकार के बचाव में एकजुट होकर न खड़े हो जाते। इस तरह वाजपेयी सरकार को अपनी वफादारी का भरपूर ईनाम मिल गया है। 'तहलका' से मसाला मिलने के बाद अचानक युद्ध का शंखनाद करने वाले कांग्रेसी अब पिपिहरी बजाने लगे हैं। कल के वफादार कुत्तों को मालिकों ने फिलहाल समझा दिया है कि वह आज के उनके चहेते कुत्तों पर गला फाड़कर भौं-भौं न करें। इसलिए अब कांग्रेसियों ने तय किया है कि वे वाजपेयी सरकार पर अगले चुनावों तक लम्बी मद्धम तान में भूंकते रहेंगे। अगर कांग्रेसी न मानते तो फिर अपनी खुद फजीहत करवाते। विसेंट जार्ज जैसे कई और नये मामले उभार दिये जाते।

मालिकों से दीर्घायु होने का आशीर्वाद पाकर अब "स्वदेशी" चोट्टे अपनी मंडली के साथ हमलावर तेवर के साथ कुछ राज्यों में खेले जाने वाले जनतंत्र के नाटक में शामिल होने निकल पड़े हैं। सरकार पर कीचड़ उछालनें वालों पर 'देश को अस्थिर करने', 'देश की सुरक्षा पर खतरा पैदा करने' और 'दुश्मनों के साथ मिलकर देश के खिलाफ साजिश रचने' का उल्टा आरोप लगाते हुए वे तकरीरें दे रहे हैं। अगर आज हिटलर का प्रचारमंत्री गोयबल्स जिन्दा होता तो अपने हिन्दुस्तानी वारिसों पर मगन होकर ताली पीट रहा होता।

अनगिनत घपलों-घोटालों के जरिये जनता की गाढ़ी कमाई के अरबों-खरबों रुपये बिना डकार लिये पचा जाने की यह विलक्षण क्षमता उदारीकरण-निजीकरण के दौर की पूंजीवादी राजनीति की चरित्रगत विशेषता बन चुकी है। आखिर यह क्षमता भला क्यों न पैदा हो? पिछले तिरपन सालों से जो व्यवस्था क़ानूनी ढंग से मेहनतकश जनता का खून पीकर हृष्ट-पुष्ट होती रही है, उसकी जारज सन्तानों में यह क्षमता तो पैदा

(पेज 10 पर जारी)

भीतर के पन्नों पर

1. श्रम कानूनों के खिलाफ तराई क्षेत्र में व्यापक अभियान - पृष्ठ 3
2. पार्टी की बुनियादी समझदारी- पृष्ठ 4
3. फाजिल अनाज भूख-बेकारी की त्रासदी अन्त्योदय योजना - पृष्ठ 5
4. दैत्य का पेट कभी नहीं भरता- पृष्ठ 5
5. चीनी क्रान्ति की सचित्र कथा - पृष्ठ 6, 7 व 8
6. बलात्कारी पुलिस और राज्य सत्ता का खूंखार चेहरा - पृष्ठ 9
7. लुधियाना पुलिस प्रशासन की नजरं में सभी किरायेदार अपराधी हैं - पृष्ठ 9
8. लेनिन के साथ दस महीने - पृष्ठ 11
9. देख फकीरे - पृष्ठ 12
10. भवानीपुर में बहा लहू धरती में जज्ब नहीं होगा - पृष्ठ 12

13 अप्रैल, 1978 पन्तनगर: मजदूर हत्याकाण्ड की याद तेइस वर्षों बाद

जो लहू गिरा था धरती पर, आवाज़ दे रहा है हमको
जो स्वप्न शहीदों ने पाले, परवान चढ़ाना है उनको

मुकुल

वह 13 अप्रैल, बैसाखी का दिन था जब पंजाब के जलियांवाला बाग में बर्तानवी लुटेरों के वर्दीधारी कुत्तों ने औरतों-बच्चों सहित सैकड़ों बेगुनाहों के खून से धरती को तर कर दिया था और लाशों के ढेर लगा दिये थे। और 1978 में वह भी 13 अप्रैल का ही दिन था जब "हरित क्रान्ति" की जन्मस्थली कहलाने वाले पन्तनगर में आज़ाद हिन्दुस्तान के देशी हुक्मरानों ने मेहनतकशों के खून से ज़मीन को सींच डाला। जनरल डायर की देशी दोगली औलादों ने पंतनगर की धरती को खूनी धरती में बदल डाला। यह वह दौर था जब आपातकाल के अन्धकारमय उन्नीस महीनों के बाद "दूसरी आज़ादी" और "सम्पूर्ण क्रान्ति" के प्रणेताओं का राज चल रहा था। यह जनता पार्टी का शासन काल था। आपातकाल के फासिस्ट दौर की समाप्ति के बाद बहुतेरे लोग बदलाव की नई उम्मीदें पाले हुए थे।

नैनीताल की तराई में स्थित पंतनगर कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय मे जिल्लत की ज़िन्दगी जी रहे हजारों मज़दूरों-कर्मचारियों ने भी बेहतरी का ख्वाब देखा। उस वक्त साढ़े छह रुपये दिहाड़ी पर हाड़तोड़ मेहनत करने को अभिशप्त थे यहां के मज़दूर। यहां के मज़दूरों -कर्मचारियों ने अपने को संगठित किया और तमाम मशक्कतों के बाद अपनी यूनियन का पंजीकरण करवाया। नयी यूनियन ने न्यायसंगत मांगों के साथ अपने संघर्षों की शुरुआत की। 28 नवम्बर'77 को 'पन्तनगर कर्मचारी संगठन' द्वारा लम्बे समय से कार्यरत दिहाड़ी मज़दूरों के नियमित आवास, चिकित्सा और साप्ताहिक अवकाश जैसे बुनियादी मांगों से युक्त ज्ञापन विश्वविद्यालय प्रशासन को सौंपा गया। और तबसे संघर्षों को जो क्रम शुरू हुआ वह 11 अप्रैल'78 की अनिश्चित कालीन हड़ताल में तब्दील हो गया। इधर पूरा विश्वविद्यालय पी.ए.सी. छावनी बन

(पेज 10 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

खून-पसीना हमारा बंगला-गाड़ी उनकी

आज से दस-बारह साल पहले जब हम लोग अपना घर-बार, जगह-जमीन छोड़कर रोजी-रोटी की तलाश में लुधियाना आये थे तो यहां के फैक्टरी मालिकों के पास तब कुछ भी नहीं था। बहुतेरे तो साइकिल पर सवारी करते देखे जा सकते थे। अक्सर ये फैक्टरी मालिक रेलवे स्टेशन पर लाइन लगाये खड़े रहते थे और बिहार, उत्तर प्रदेश, बंगाल, केरल आदि जगहों से ट्रेन से आने वाले मज़दूरों को तरह-तरह का लालच देकर अपने छोटे-छोटे कारखानों में काम करने को कहते थे। आहिस्ता-आहिस्ता लुधियाना एक औद्योगिक महानगर बनता गया और लाखों की संख्या में 'प्रवासी' मज़दूरों ने अपने पंजाबी भाइयों के साथ मिलकर यहां के कारखानों में अपना खून-पसीना बहाया और छोटे-छोटे मालिकों के लिए मुनाफे का अंबार लगा दिया। अब वही छोटे-छोटे कारखानों के मालिक बड़ी-बड़ी फैक्टरियों के मालिक हैं जो एयरकंडीशंड कोठियों में रहते हैं और एयरकंडीशंड गाड़ियों में घूमते हैं।

लेकिन यहां के मज़दूर आज भी वैसी ही या उससे भी बदतर ज़िन्दगी जीने के लिए मजबूर हैं। कारखाने में 12-12, 16-16 घंटे काम करके भी हम अपनी ज़िन्दगी की बुनियादी ज़रूरतों को भी पूरा नहीं कर पाते। तनख्वाहें इतनी कम हैं कि हम अलग से क्वार्टर लेकर रह भी नहीं सकते। हमारे जैसे लाखों मज़दूर यहां के बड़े-बड़े बेहड़ों में बने मुर्गी के दड़बानुमा कमरों में पांच-छह लोग एक साथ गुजर-बसर करते हैं। हम अपने बच्चों की न तो ठीक से परवरिश कर पाते हैं और न उन्हें पढ़ा-लिखा पाते हैं। हमारी ही तरह हमारे बच्चे भी बड़े होकर इन्हीं पूंजीपतियों की गुलामी करने के लिए मजबूर होंगे। पीढ़ी-दर-पीढ़ी यही सिलसिला चला आ रहा है।

मालिक की तिजोरियां भरने वाले यहां के लाखों 'प्रवासी' मज़दूर अब मालिकों के लिए 'भइये' बन गये हैं। भइया शब्द का अर्थ भले ही भाई होता है मगर पंजाब में 'भइया' शब्द अब प्रवासी मज़दूरों के लिए नफरत का प्रतीक है। जिस तरह गांवों में दलितों को चूड़ा-चमार कहकर धिक्कारा जाता है उसी तरह यहां पर भइया शब्द का इस्तेमाल होता है।

आजकल तो हम 'भइया' लोगों के ऊपर मालिकान जुल्म ढाने के नये-नये तरीके ईजाद कर रहे हैं। हमें चोरों-डकैतों के रूप में बदनाम किया जा रहा है और पंजाबी मज़दूरों को प्रवासी मज़दूरों के खिलाफ भड़काया जा रहा है। पंजाब सरकार और यहां के प्रशासन की भी इसमें मिलीभगत है। हमारे खून-पसीने की कमाई को लूटकर लखपति-करोड़पति बने ये पूंजीपति अब हमें ही पंजाब से निकाल बाहर करने की धमकियां देने लगे हैं।

अब हमने यह बात अच्छी तरह समझ ली है कि लुटेरी पूंजीवादी व्यवस्था में तो ऐसा ही होगा। पूंजीपति लुटेरे इसी तरह मेहनत करने वालों को धर्म, जाति, रंग, नस्ल के नाम पर बांटकर अपना उल्लू सीधा करते रहेंगे। इससे मुक्ति की एक ही राह है कि सभी मेहनतकश धर्म, जाति, रंग, नस्ल के भेदभाव मिटाकर एकजुट हों और इस लुटेरे निजाम को ही उखाड़ फेंका जाये।

विक्रम सिंह, हीरा लाल पटेल, लुधियाना

आदरणीय साथी,

लाल सलाम,

''बिगुल'' के अंक यदा-कदा मिल जाते हैं... पुराने पते पर ... भूले-भटके।

''बिगुल'' एक निहायत ही जरूरी पत्रिका है। मेरे जैसे लोग इसे पढ़कर काफी समृद्ध होते हैं। इसके लेख, जनसंघर्षों की रपटें और अन्यान्य समसामयिक विश्लेषण बड़े ही तथ्य परक, निष्पक्ष, जनप्रतिबद्ध और सटीक होते हैं।

अंक कभी-कभार ही मिलता है फिर भी मैं अपने को काफी सम्पन्न पाता हूं। चीनी क्रांति की सचित्र कथाएं देख-पढ़कर ऐसा लग रहा है जैसे हम खुद उस दौर में पहुंच गये हैं। जन मुक्ति का यह बिगुल यूं ही बजता रहे... इसी कामना के साथ,

सृंजय
आसनसोल (प. बंगाल)

राहुल फाउण्डेशन का पता बदलने की सूचना

कृपया 'राहुल फाउण्डेशन' का वर्तमान पता दर्ज कर लें:

राहुल फाउण्डेशन
69, बाबा का पुरवा
पेपरमिल रोड,
निशातगंज
लखनऊ - 226 006

पश्चिम बंगाल में खनन क्षेत्र का निजीकरण

संसदीय वामपंथियों का दुरंगापन

बिगुल प्रतिनिधि

संसद में बैठकर निजीकरण-उदारीकरण की मुखालफत करने वाले तथाकथित वामपंथियों के गढ़ प.बं. में खनन क्षेत्र का निजीकरण होने जा रहा है। पश्चिम बंगाल में पुरुलिया, वीरभूम, मिदनापुर, बर्दमान, बांकुरा आदि जिलों में जो विशाल खनिज भंडार है, उसे मुनाफाखोरों को सौंपने की तैयारियां चल रही हैं। राज्य के उद्योग व वाणिज्य मंत्री कहते हैं कि सरकार अपना एकाधिकार समाप्त कर खनन क्षेत्र में निजी निवेश की संभावनाएं तलाश रही है, जिसके लिए शीघ्र ही नई खनन नीति की घोषणा की जायेगी।

मंत्री महोदय के अनुसार नई खनन नीति से खनन क्षेत्र के विकास की गति तो तेज होगी ही, साथ में रोजगार के और अधिक अवसर पैदा होंगे। अभी तक राज्य के सम्पन्न खनिज भंडारों के खनन का अधिकार 'वेस्ट बंगाल मिनरल डेवलपमेंट एंड ट्रेडिंग कारपोरेशन' के ही पास था। जिस तरह देश में तमाम सार्वजनिक उपक्रमों का निजीकरण हो रहा है, उसी तरह इस कारपोरेशन का भी निजीकरण कर दिया जायेगा।

यहां गौरतलब है कि निजीकरण के पक्ष में जो तर्क सत्ता में बैठकर अन्य चुनावबाज पार्टियों के नेता देते हैं, वही तर्क "वामपंथी" सरकार के मंत्री दे रहे हैं। यदि निजीकरण से विकास की गति तेज होती है, रोजगार बढ़ता है तो संसद में बैठकर ये वामपंथी नेता सार्वजनिक उपक्रमों के बेचे जाने पर छाती क्यों पीटते हैं? या तो ये बेहद मासूम हैं जो समझते हैं कि प. बं. और केरल के अलावा जहां कहीं निजीकरण-उदारीकरण की नीतियां लागू होंगी, वहां कहर बरपा हो जायेगा या फिर ये बहुत बड़े धोखेबाज, नौटंकीबाज हैं।

दरअसल, बात बहादुरों के सिरमौर ये वामपंथी तोते दो जबान बोलना खूब अच्छी तरह जानते हैं। लाल मिर्ची मुंह में दबाये इन तोतों,को पूंजीवाद विरोधी राग अलापने में भी महारथ हासिल है, साथ ही इन्हें "अपनी शर्तों पर निजी पूंजी निवेश" जैसी जुमलेबाजियों से जनता को भरमाकर पूंजीपतियों की सेवा करना भी अच्छी तरह आता है। संसद में बैठकर बहस करना ये खूब जानते हैं, भूमण्डलीकरण की नीतियों के विरोध में वाकआउट कर शहीदों में अपना नाम लिखाना जानते हैं, साथ ही सत्तारूढ़ होने पर मज़दूर विरोधी नई आर्थिक नीतियों को अमली जामा पहनाना भी इन्हें खूब आता है। इसीलिए, निजीकरण-उदारीकरण के खिलाफ हो रहे संघर्षों को सही दिशा देते वक्त मज़दूरों को इन नक्कालों से सावधान करने की ज़रूरत है।

बंधुवर,

''बिगुल'' का जनवरी अंक मिला। पिछले वर्ष के अंत में देशव्यापी डाक-हड़ताल पर आपने गहराई में जाकर टिप्पणी की है। उस व्यवस्था से क्या उम्मीद की जा सकती है जो वस्तुत: शोषण और धोखाधड़ी पर टिकी है। इस सामग्री को मैं खास तौर पर रेखांकित करना चाहता हूं, जबकि आज का हर शिक्षित व्यक्ति कहीं न कहीं डाक विभाग से जुड़ा है लेकिन उनकी समस्याओं के प्रति हम कितने उदासीन व असंवेदनशील हैं। यह चिंता का विषय है।

भारत भारद्वाज
नई दिल्ली

दायित्वबोध कार्यालय स्थानान्तरण सूचना

'दायित्वबोध' का सम्पादकीय कार्यालय अब लखनऊ से दिल्ली स्थानान्तरित हो गया है। कृपया अब निम्नलिखित पते पर ही पत्र व्यवहार करें:

द्वारा : सत्यम वर्मा
81, समाचार अपार्टमेण्ट
मयूर विहार, फेज-1
दिल्ली- 110091
फोन नं. 2711136

बिगुल पोस्टर-श्रृंखला के तहत प्राप्त करें दो आकर्षक पोस्टर

कम्युनिस्ट घोषणा पत्र की 150वीं वर्षगांठ के अवसर पर

बिगुल पोस्टर -1

महान पेरिस कम्यून की 128वीं जयन्ती (18 मार्च) के अवसर पर

बिगुल पोस्टर -2

प्राप्ति स्थान

जनचेतना

डी-68, निराला नगर, लखनऊ-226 020
फोन : 788932

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही-राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर ''कम्युनिस्टों'' और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

बिगुल यहां से प्राप्त करें

◆ शहीद पुस्तकालय, जनगण होम्यो सेवा सदन, मर्यादपुर, मऊ ◆ मौर्या बुक स्टाल, सआदतपुरा (निकट रोडवेज), मऊनाथभंजन, मऊ ◆ जनचेतना, जाफरा बाजार, गोरखपुर
◆ विजय इन्फारमेशन सेन्टर, कचहरी बस स्टेशन, गोरखपुर ◆ विश्वनाथ मिश्र, नेशनल पी.जी. कालेज, बड़हलगंज, गोरखपुर
◆ ओमप्रकाश, 69, बाबा का पुरवा (पुराना), पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ ◆ जनचेतना स्टाल, काफी हाउस के पास, हजरतगंज, लखनऊ, (शाम 5 से 8.30) ◆ राहुल फाउण्डेशन, 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ ◆ विमल कुमार, बुक स्टाल, निकट नीलगिरि काम्प्लेक्स, ए ब्लाक, इंदिरानगर, लखनऊ ◆ मदन पाल, दुकान नं. -28, नयी सब्जी मंडी, पुराने कपड़े का मार्केट, रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर)◆ रामपाल सिंह, भारतीय जीवन बीमा निगम, आवास विकास, रुद्रपुर (ऊधमसिंहनगर) ◆ रवीन्द्र कुमार, भारतीय जीवन बीमा निगम, शाखा कार्यालय, पन्तनगर ◆ कृष्णगोविन्द सिंह, बी-18, बिड़ला छात्रावास, बी.एच.यू. वाराणसी ◆ प्रोग्रेसिव बुक सेंटर, विश्वनाथ मंदिर गेट, बी.एच.यू. वाराणसी ◆ राजीव वर्मा द्वारा डा. जे.पी. वर्मा, बी. पी. 82, पटेलनगर, मुगलसराय, वाराणसी ◆ राजेन्द्र प्रसाद, रेणु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, सोनभद्र ◆ सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेंट, मयूर विहार-एक, नई दिल्ली ◆ ललित सती, एल.आई.सी., फैज रोड शाख, दिल्ली ◆ नई किरण पुस्तक भंडार, एफ-56, हरकेश नगर, ओखला, नई दिल्ली, ◆ पंकज कुमार, 256, मॉडल टाउन, सोनीपत, हरियाणा ◆ डी. के. सचान, कृषि विज्ञान केंद्र, विकास भवन, नई कलक्ट्रेट, गाजियाबाद ◆ सुनील कुमार सिंह, सेक्टर-12 बी, 3159, बोकारो इस्पातनगर, बोकारो ◆ गणपतलाल, ग्राम काजी रसूलपुर, पो. तेघड़ा, बेगूसराय ◆ पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, पटना ◆ समकालीन प्रकाशन (प्रा.) लि. पुस्तक बिक्री केन्द्र, आजाद मार्केट, पीरमुहानी, पटना ◆ विमर्श, 22, स्वास्तिक काम्प्लेक्स, रसल चौक ,जबलपुर ◆ नरभिन्दर सिंह, द्वारा डा. सुखदेव हुन्दल, ग्रा/पो. सन्तनगर, जिला-सिरसा ◆ राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मंदिर, प्रधान नगर, सिलीगुड़ी, दार्जीलिंग ◆ बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता ◆ शर्मा बुक स्टाल, थाना रोड, चराली, तिनसुकिया नेपाल ◆ विश्व नेपाली पुस्तक सदन, श्रवनपथ, बुटवल, रुपनदेई, नेपाल ◆ विशाल पुस्तक सदन, बिजुवार बाजार, प्यूठान राप्ती अंचल ◆ विशाल पुस्तक पसल, अस्पताल लाइन, बुटवल, लुम्बिनी, नेपाल

• • •

नये श्रम कानूनों के खिलाफ तराई क्षेत्र में सघन एवं व्यापक अभियान

(बिगुल संवाददाता)

रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर)। बजट के माध्यम से श्रम कानूनों में फेरबदल और प्रस्तावित घातक नये श्रम कानूनों के खिलाफ 'बिगुल मज़दूर दस्ता' द्वारा कुमायूं के तराई-भाबर क्षेत्रों और बरेली, रामपुर, ज्योतिबाफुले नगर के कुछ औद्योगिक क्षेत्रों में व्यापक व सघन अभियान चलाया जा रहा है।

अभियान के दौरान आयोजित सभाओं और जनसम्पर्क के दौरान वक्ताओं ने कहा कि चोर दरवाज़े से पहले से ही सीमित मज़दूरों के अधिकारों पर और ज़्यादा अंकुश लगाने वाला प्रस्ताव पेश करके भाजपा सरकार ने लाखों मज़दूरों के भविष्य पर एक और ताला लगा दिया है। तहलका के शोरगुल की आड़ में वह ख़तरनाक दस्तावेज पारित हो रहा है जिसमें उन सभी कारखानों के मज़दूर श्रम क़ानूनों की महत्वपूर्ण धाराओं से वंचित हो जायेंगे, जहां 1000 से कम श्रमिक कार्यरत हैं। इस चपेट में 90 प्रतिशत से ज़्यादा कारखाने आ जायेंगे। वक्ताओं ने कहा कि श्रम क़ानूनों में किश्तों में यह परिवर्तन भी एक सरकारी साजिश है जिसके तहत एक हजार से कम और अधिक कारखाना मज़दूरों को आपस में बांटा जा सके। 'बिगुल मज़दूर दस्ता' के कार्यकर्ताओं ने मज़दूर आबादी को बांटने की इस खतरनाक साजिश से सचेत होने और बंटवारे के हर कोशिशों को नाकाम करते हुए व्यापक मज़दूर एकता कायम करने का आह्वान किया।

इस दौरान नये श्रम क़ानूनों की हकीकत का बयान करने वाले और मज़दूर विरोधी नीतियों के खिलाफ 'लम्बे संघर्ष की तैयारी में जुट जाने' का आह्वान करने वाले पर्चे का व्यापक वितरण भी किया जा रहा है। पर्चे में लिखा गया है कि "अब जो नया श्रम कानून आ रहा है, उसका सूत्र वाक्य है 'हायर एण्ड फायर'। यानी जब चाहो काम पर रखो जब चाहो निकाल बाहर करो।" अब "अनुशासनहीनता और असंतोषजनक" काम के नाम पर किसी भी श्रमिक की सेवा समाप्ति का हथियार मालिकों को मिलने जा रहा है।

पर्चे के माध्यम से बताया गया है कि श्रम क़ानूनों में "सुधार" लाना भी उदारीकरण-निजीकरण कुचक्र का एक बुनियादी हिस्सा रहा है। जिसके लिये विश्व बैंक-अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष जैसे साम्राज्यवादियों की चाकर अन्तर्राष्ट्रीय एजेंसियां विगत एक दशक से लगातार दबाव बनाये हुए हैं। जिस बदनाम गैट समझौते (डंकल प्रस्ताव) पर हस्ताक्षर करके भारत विश्व व्यापार संगठन में शामिल हुआ है, उसमें पेटेण्ट क़ानूनों में बदलाव और बैंक-बीमा आदि के निजीकरण के साथ ही श्रम क़ानूनों में बदलाव लाना भी एक बुनियादी शर्त है, ताकि विदेशी कम्पनियां और उनके छुटभैये देशी पूंजीपति श्रमिकों को मनमाने ढंग से निचोड़कर अपनी तिजोरी भर सकें।

ऊधमसिंह नगर के काशीपुर, बाजपुर, गदरपुर, रुद्रपुर, किच्छा, पन्तनगर, मरकोटा, सितारगंज, खटीमा व नैनीताल जिले के रानीबाग, हल्द्वानी, हल्दू चौड़, लालकुआं के अलावा विलासपुर (रामपुर); इज़्ज़तनगर, बहेड़ी (बरेली) व गजरौला (ज्योतिबाफुले नगर) में विभिन्न टोलियों द्वारा कारखानों-मिलों-दफ्तरों में चलाये गये अभियान के दौरान इस बात पर जोर दिया गया कि अब एक बार फिर वह वक्त आ गया है जबकि हम सच्चाई से सामना करें। अब लड़ाई को पूंजीवादी व्यवस्था के खिलाफ केन्द्रित किये बिना थोड़ी बहुत सुविधाएं भी हासिल कर पाने की संभावनाएं ख़त्म होती जा रही हैं। अभियान के माध्यम से अपनी वर्गीय एकता को मजबूत करने और संघर्ष की नई राह पर आगे बढ़ने का भी आह्वान किया गया।

विभिन्न जगहों पर, अभियान के दौरान यह देखने में आया कि लोगों में इन घातक नीतियों के खिलाफ आक्रोश है, और निराशा तथा पस्तहिम्मती के इस दौर में भी लोगों में कुछ करने की तमन्ना है। हर जगह लोग साझा और एकताबद्ध संघर्ष की ज़रूरत को महसूस कर रहे हैं। आम मेहनतकश अवाम में बदलाव की छटपटाहट है। लोगों का सभी किस्म के चुनावी मदारियों से मोहभंग हो चुका है।

(बिगुल संवाददाता)

उदारीकरण के एक दशक पर संगोष्ठियों का आयोजन

एकताबद्ध साझा संघर्ष ही एकमात्र विकल्प है!

रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर)। विगत एक दशक से जारी उदारीकरण-निजीकरण की नयी आर्थिक नीतियों के लागू होते जाने के अविराम क्रम में जहां एक तरफ पगलाये सत्ताधारियों ने आम जन की तबाही वाली नीतियों को लागू करने की रफ्तार और तेज कर दी है, वहीं मज़दूरों-कर्मचारियों और आम जनता के सचेत तबकों द्वारा छोटे-छोटे आन्दोलनों, संगोष्ठियों-सभाओं आदि के माध्यम से अपने संघर्षों को नया आयाम देने की प्रक्रिया भी अब गति पकड़ने लगी है। इसी क्रम में बीमा कर्मचारी संघ, हल्द्वानी डिवीजन के विलासपुर (रामपुर) व रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर) इकाइयों की पहल पर विचार-मंथन हेतु संगोष्ठियों का आयोजन किया गया, ताकि संघर्षों को नया आयाम दिया जा सके।

सोना बेचने से लेकर आर्थिक सम्प्रभुता को किश्त-दर-किश्त गिरवी रखने की यात्रा का एक विनाशकारी पड़ाव होने पर आयोजित इन संगोष्ठियों के माध्यम से यह बात साफ तौर पर उभरकर आयी कि उदारीकरण ऊपर के दस फीसदी आबादी के लिए स्वर्ग है और नीचे की सत्तर फीसदी मेहनतकश अवाम को रसातल में ढकेलने वाली, तबाही का कहर बरपा करने वाली है। दोनों संगोष्ठियों में इस बात पर चिन्ता जतायी गयी कि सरकारी सार्वजनिक क्षेत्र हो अथवा निगम या निजी क्षेत्र, नियमित श्रमिक हों या दैनिक वेतनभोगी यदि उदारीकरण की मार सभी झेल रहे हैं तो फिर सबके आंदोलन बंटे-बिखरे क्यों हैं? लोगों ने साझा संघर्ष की रणनीति बनाने पर सहमति जताई। 3 मार्च को विलासपुर में आयोजित संगोष्ठी का विषय था – "उदारीकरण का एक दशक" और 24 मार्च को रुद्रपुर में सम्पन्न संगोष्ठी का विषय था – "उदारीकरण के दस वर्ष: कितना घातक, कितना दमघोंटू"।

रुद्रपुर की संगोष्ठी की अध्यक्षता करते हुए पंतनगर कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के कृषि वैज्ञानिक प्रो. प्यारेलाल ने कहा कि जिन संकटों ने विश्व पूंजीवाद के छोटे-बड़े चौधरियों को भूमण्डलीकरण की नयी आर्थिक रणनीति अपनाने के लिये बाध्य किया, वे आज असाध्य रोग बन चुके हैं। साम्राज्यवादी अपने संकटों का ज्यादा से ज्यादा बोझ भारत जैसे देशों की ग़रीब जनता को निचोड़कर हल्का कर लेना चाहते हैं। परिणामतः नई आर्थिक नीतियों के अमल के एक दशक में भारत के इतिहास का एक नया अंधकारमय, विनाशकारी दौर शुरू हो चुका है। उन्होंने कहा कि इस दौर में निजीकरण-छंटनी-तालाबन्दी की प्रक्रिया और तेज हो गयी है। गावों में पूंजी के तेज विस्तार ने छोटे और मंझोले दर्जे के किसानों को उनकी जगह-जमीन से उजाड़कर उजरती गुलामों की कतारों में ला खड़ा करने की रफ्तार तेज कर दी है। प्रो. प्यारेलाल ने कहा कि आर्थिक नव उपनिवेशवाद के इस दौर में संघर्ष का निशाना विश्व साम्राज्यवाद और उसके जूनियर पार्टनर देशी पूंजीपति वर्ग के खिलाफ केन्द्रित करना होगा। तभी जनविरोधी आर्थिक नीतियों का खात्मा संभव है।

संगोष्ठी के प्रारम्भ में बीमा कर्मचारी संघ हल्द्वानी डिवीजन, रुद्रपुर के शाखा सचिव रामपाल सिंह द्वारा प्रस्तुत आधार पत्र में कहा गया कि विगत एक दशक से लागू उदारीकृत नई आर्थिक नीतियों के परिणामस्वरूप ढाई लाख छोटे-बड़े उद्योग बन्द हो चुके हैं और तीन करोड़ लोग सड़कों पर ढकेले जा चुके हैं। बीमा के बाद बैंक, बिजली, दूरसंचार, डाक-तार, शिक्षा-स्वास्थ्य सबका निजीकरण जारी है। बाल्को जैसे फायदे वाले कारखानों तक को बेचा जा रहा है। आये दिन आत्महत्या की घटनाएं बढ़ती जा रही हैं। गैट समझौते ने देश के वैज्ञानिक प्राविधि के विकास और खेती के भविष्य को सीलबन्द कर दिया है। उन्होंने कहा कि आंकड़े बताते हैं कि अर्थव्यवस्थाओं के बढ़ते भूमण्डलीकरण ने विश्व स्तर पर ग़रीबों को और अधिक ग़रीब तथा धनियों को और अधिक धनी बनाया है। पूंजीवादी विकास के इस दौर में बेरोजगारी और मंहगाई लगातार बढ़ती गई है। आज देश में 22 करोड़ बेरोजगारों की फौज खड़ी हो चुकी है उन्होंने कहा कि पूंजीवाद का विश्व ऐतिहासिक काल अब समाप्ति के निकट खड़ा है, इसका सबसे बड़ा प्रमाण है कि आज कुल पूंजी का दस प्रतिशत से भी कम निवेश जीवनोपयोगी बुनियादी चीज़ों के उत्पादन में हो रहा है। शेष सारी पूंजी सट्टेबाजी या वित्तीय तंत्र में निवेश जैसी अनुत्पादक कार्रवाइयों में लगी है।

रामपाल ने कहा कि आज उदारीकरण-निजीकरण के खिलाफ लोग संघर्ष तो कर रहे हैं लेकिन उनके संघर्ष बिखरे हुए हैं। बीमा कर्मियों ने शानदार लड़ाइयां लड़ीं, लेकिन एक तो वे अकेले लड़े, दूसरे उनका आन्दोलन पूरे पूंजीवादी तंत्र के खिलाफ नहीं केन्द्रित हो सका।

श्रीराम होण्डा श्रमिक संगठन के अध्यक्ष रामचन्द्र शर्मा ने कहा कि जहां एक तरफ देश के पूंजीवादी घरानों की पूंजी में चार-पांच सौ गुने की वृद्धि हुई है वहीं ग़रीबी रेखा से नीचे रहने वाली चालीस फीसदी आबादी को शिक्षा, दवा-इलाज जैसी बुनियादी ज़रूरतें तो दूर भरपेट भोजन भी नहीं मिल पा रहा है। उन्होंने कहा कि आज देशी-विदेशी पूंजीवादी लुटेरों ने जो जबर्दस्त हमला बोला है उसके खिलाफ मेहनतकश आबादी को एकताबद्ध संघर्ष के लिये कमर कस लेनी होगी। इसके लिये उन्होंने साझा संघर्ष की रणनीति बनाने पर जोर दिया।

आनन्द निशिकावा श्रमिक संगठन के महामंत्री तुला सिंह ने कहा कि आज का दौर महज कहने और बन्द कमरे की गोष्ठियां करने का नहीं है वरन कुछ करने की ज़रूरत है। उन्होंने तमाम कारखानों का उदाहरण देते हुए बताया कि जिस श्रम क़ानून का आज खत्म करने की बात चल रही है, तमाम कारखानों में वह श्रम क़ानून भी अब तक लागू नहीं हो सका है। उन्होंने कहा कि हर जगह छोटे तबके का आदमी ही पिस रहा है। पी. डब्लू.डी. के कर्मचारी नेता घनश्याम काण्डपाल ने न्यायालय तक को इस व्यवस्था का हित सेवक बताते हुए बाल्को का उदाहरण प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि इस लाभकारी कारखाने को बेचने में उच्चतम न्यायालय ने महज दो माह के भीतर फैसला सुना दिया जबकि तमाम घोटालों से लेकर लाखों मुकदमें न्यायालयों में लम्बे समय से लम्बित पड़े हैं। बैंककर्मी शिवदेव सिंह ने कहा कि 1991 में देश पर 2000 करोड़ रु. का जो कर्ज था आज चार लाख सत्तर हजार करोड़ रुपये हो गया है। उन्होंने कहा कि छोटे-छोटे संघर्षों का क्रम जारी है, ज़रूरत है उन्हें व्यापक संघर्षों में तब्दील करने की।

बिगुल मज़दूर दस्ता के अमर सिंह ने अभी ताजा बजट के माध्यम से पारित हो रहे घातक श्रम क़ानूनों का खुलासा करते हुए कहा कि यह मज़दूरों के रहे-सहे जनवादी अधिकारों पर बड़ा हमला है। यह मज़दूरों-कर्मचारियों की नौकरी सुरक्षा गारण्टी को खत्म करने वाला और ठेका प्रथा को बढ़ाने वाला होगा। उन्होंने जनता की समानान्तर सत्ता खड़ा करने के लिए तमाम राजनीतिक-आर्थिक संघर्षों को एक कड़ी में पिरोने की आवश्यकता पर जोर दिया।

क्रान्तिकारी लोक अधिकार संगठन के वेद व्यास मुनि तिवारी ने कहा कि जनता की अकूत मेहनत से खड़ा किये गये सार्वजनिक उद्योगों को निचोड़ने के बाद उसे अब बेचा जा रहा है। उन्होंने कहा कि उदारीकरण का दौर व्यापक आम जनता के लिए घातक है और इसके खिलाफ व्यापक जनसंघर्ष की तैयारी करनी चाहिए। हल्द्वानी से आये बीमाकर्मी बृजेश नरियाल ने कहा कि एक ईस्ट इण्डिया कम्पनी की गुलामी से छुटकारा मिलने में दो सौ वर्ष लग गये तो सैकड़ों कम्पनियों के आने के बाद की गुलामी से छुटकारा मिलने में कितना वक्त लगेगा? इसलिए हमें अभी से सचेत होना होगा। जिला सहकारी बैंक विलासपुर से आये संतोष कुमार पाण्डेय ने इस दौर को आम जनता के अहित में ही निर्णय लेने का दौर बताया। जबकि हल्द्वानी मण्डलीय कार्यालय से आये बीमा यूनियनकर्मी हरीश लसपाल ने विलासपुर व रुद्रपुर की इस पहल को महत्वपूर्ण बताते हुए इसका व्यापक विस्तार करने पर जोर दिया और संघर्षों के एक साझा प्लेटफार्म की आवश्यकता महसूस की। संगोष्ठी में बीमाकर्मी देवराज, विपिन त्रिपाठी, राजेश तिवारी आदि ने भी सारगर्भित बातें रखीं। संगोष्ठी का संचालन विलासपुर से आये बीमा ट्रेड यूनियन कर्मी और शाखा अध्यक्ष मनोज गुप्ता ने की।

संगोष्ठी के अन्त में उदारीकरण के घातक और दमघोंटू नीतियों के खिलाफ पांच सूत्री प्रस्ताव (1) नयी आर्थिक नीति वापस लो (2) निजीकरण-छंटनी-तालाबन्दी बन्द करो, विनिवेशीकरण की प्रक्रिया पर रोक लगाओ (3) प्रस्तावित मज़दूर विरोधी श्रम क़ानून वापस लो (4) मज़दूरों-कर्मचारियों का दमन बन्द करो (5) खेती की तबाही पर रोक लगाओ, पेटेण्ट क़ानून को खत्म करो – पारित किया गया। सभा का समापन 'बिगुल मज़दूर दस्ता' की टोली द्वारा प्रस्तुत क्रान्तिकारी गीत के माध्यम से हुआ।

परिकल्पना प्रकाशन की प्रस्तुति

माँ

वास्तविक घटनाओं पर आधारित 1905-7 की पहली रूसी क्रान्ति के समय लिखी गई और समूची दुनिया के पाठकों के बीच अत्यधिक लोकप्रिय पुस्तक

गोर्की की यह पुस्तक महज एक मज़दूर परिवार की नियति का चित्रण करने के बजाय समूचे सर्वहारा वर्ग के भविष्य को विलक्षण शक्ति के साथ चित्रित करती है।

मूल्य : 70 रुपये

प्राप्त करें :

जनचेतना

डी-68, निराला नगर, लखनऊ-226 020

फोन : 788932

विशेष सामग्री

पार्टी की बुनियादी समझदारी

(तीसरी किश्त)

अध्याय - 2 (पिछले अंक से जारी)

पार्टी की मार्गदर्शक विचारधारा

मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुड. विचारधारा हमारी पार्टी के कर्मों का मार्गदर्शक है

एक क्रांतिकारी पार्टी के बिना मजदूर वर्ग क्रांति को कतई अंजाम नहीं दे सकता। लेनिन ने इस बात को बार-बार जोर देकर कहा था। स्तालिन और माओ ने भी बराबर इस बात पर जोर दिया और बीसवीं सदी की सभी सफल सर्वहारा क्रान्तियों ने भी इसे सत्यापित किया।

लेनिन ने सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के सांगठनिक उसूलों का निर्धारण किया और इस फौलादी सांचे में वोल्शेविक पार्टी को ढाला। चीन की पार्टी भी बोल्शेविक पार्टी की ही उत्तराधिकारी थी। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान, समाजवादी समाज में वर्ग-संघर्ष का संचालन करते हुए माओ के नेतृत्व में चीन की पार्श्री ने अन्य युगान्तर कारी सैद्धान्तिक उपलब्धियों के साथ-साथ लेनिनवादी सांगठनिक सिद्धान्तों को भी और आगे विकसित किया।

सोवियत संघ और चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के लिए बुर्जुआ तत्वों ने सबसे पहले यही जरूरी समझाा कि सर्वहारा वर्ग की पार्टी का चरित्र बदल दिया जाये. हमारे देश में भी संसदीय रास्ते की अनुगामी नामधाारी कम्युनिस्ट पार्टियों मौजूद हैं। भारतीय मजदूर क्रांति को सफल बनाने के लिए भारत में भी सर्वहारा वर्ग की एक सच्ची कान्तिकारी पार्टी खड़ी करने का काम सर्वोपरि है।

इसके लिए बेहद जरूरी है कि मजदूर वर्ग यह जाने कि असली और नकली कम्युनिस्ट पार्टी में क्या फर्क होता है और एक कान्तिकारी पार्टी खड़ी करने का काम सर्वोपरि है।

इसी उद्देश्य से, फरवरी, 2001 अंक से हमने एक बेहद जरूरी किताब 'पार्टी की बुनियादी समझदारी' के अध्यायों का किश्तों में प्रकाशन शुरू किया है। इस अंक में तीसरी किश्त दी जा रही है। यह किताब सांस्कृतिक कान्ति के दौरान पार्श्री-कतारों और युवा पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए तैयार की गयी श्रृंखला की एक कड़ी थी. चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस (1973) में पार्टी के गतिशील कान्तिकारी चरित्र को बनाये रखने के प्रश्न पर अहम सैद्धान्तिक चर्चा हुई थी, पार्टी का नया संविधाान पारित किया गया था और संविधान पर एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी थी। इसी नई रोशनी में यह पुस्तक एक सम्पादकमण्डल द्वारा तैयार की गयी थी। मार्च, 1974 में पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, शंघाई से इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की 4,74,000 प्रतियां छपीं। यह पुस्तक पहले चीनी भाषा से फांसीसी भाषा में अनूदित हुई और 1976 में प्रकाशित हुई। फिर नार्मन बेथ्यून इंस्टीच्यूट, टोरण्टो (कनाडा) ने इसका फांसीसी से अंग्रेजी में अनुवाद कराया और 1976 में ही इसे प्रकाशित भी कर दिया। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद मूल पुस्तक के इसी अंग्रेजी संस्करण से किया गया है।

- सम्पादक

अध्यक्ष माओ बताते हैं: **"मार्क्सवाद-लेनिनवाद हमारे चिन्तन का मार्गदर्शन करने वाला सैद्धान्तिक आधार है।"** हमारी पार्टी मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुड. विचारधारा को अपने चिन्तन का मार्गदर्शन करने वाली सैद्धान्तिक आधार बनाने में, अपने सभी कामों का निर्देशन करने वाली तथा समूची पार्टी, सेना और जनता के व्यवहार का मार्गदर्शन करने वाली दिशा बनाने में हमेशा दृढ़ रही है।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुड. विचारधारा वह सैद्धान्तिक आधार संघटित करती है जिससे हमारी पार्टी सही लाइन और सही नीतियों का प्रतिपादन करती है। जो पार्टी खुद को मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुड. विचारधारा से लैस कर लेती है, वह सामाजिक विकास के वस्तुगत नियमों को समझ लेने और उन पर अपनी पकड़ कायम कर लेने में सक्षम हो जाती है, वह परिस्थितियों का विश्लेषण करने और भविष्य को पहले से ही देख लेने की क्षमता हासिल कर लेती है, और इस आधार पर, वह उस समय के क्रान्तिकारी कार्यभार को परिभाषित कर लेने की, तथा अपने कार्यक्रम, लाइन, दिशा और नीतियों को सही तरीके से सूत्रबद्ध कर लेने की योग्यता प्राप्त कर लेती है। कोई क्रान्ति मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुड. विचारधारा द्वारा दिये जाने वाले नेतृत्व से यदि विपथगमन कर जाती है तो उसकी स्थिति महासागर में बिना कुतुबनुमा वाले जहाज सरीखी होती है – वह क्रान्ति अपनी दिशा खो देने का जोखिम मोल लेती है। 50 वर्षों से भी कुछ अधिक अवधि के दौरान हमारी पार्टी के अनुभव ने यह दिखाया है कि यदि हमारा क्रान्तिकारी उद्देश्य अपने रास्ते में आने वाली हर बाधा को, एक-एक करके हटाते जाने में, सभी तरह के दुश्मनों को शिकस्त देने में और महान जीतें हासिल करनेमें कामयाव हुआ है; तो ऐसा इसलिए हुआ है कि अध्यक्ष माओ ने हमारी पार्टी के लिए एक सही मार्क्सवादी-लेनिनवादी लाइन तय की है। यह सही लाइन द्वंद्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद पर आधारित है; यह मार्क्सवाद-लेनिनवाद की सार्वभौमिक सच्चाई को व्यापक जन-समुदाय के असंख्य सदस्यों के क्रान्तिकारी व्यवहार के साथ मिलाने से पैदा हुआ है। यही कारण है कि यह ऐतिहासिक विकास के वस्तुगत नियमों के अनुरूप है, सर्वहारा वर्ग और समूचे मेहनतकश अवाम के बुनियादी हितों का प्रतिनिधित्व करता है, तथा क्रान्ति और निर्माण के उद्देश्य को लगातार बड़ी से बड़ी विजय की ओर आगे बढ़ने में नेतृत्व देने में सक्षम है।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुड. विचारधारा वह विचारधारात्मक हथियार है जिससे हमारी पार्टी सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी कतारों को शिक्षित करती है और मजबूत बनाती है। सर्वहारा वर्ग संघर्ष के लम्बे अनुभव ने यह स्पष्ट कर दिया है कि सही विचारधारात्मक नेतृत्व के बिना, सर्वहाराओं की संख्या चाहे जितनी भी अधिक क्यों न हो, वे अपने वर्ग के ऐतिहासिक मिशन को समझ पाने में सफल नहीं हो सकेंगे। अध्यक्ष माओ ने स्पष्ट किया है कि सिर्फ मार्क्सवाद का क्रान्तिकारी सिद्धान्त ही सर्वहारा वर्ग को **"पूंजीवादी समाज के सारतत्व को, सामाजिक वर्गों के बीच के शोषण के सम्बन्धों को और इसके खुद के ऐतिहासिक कार्यभार का समझ पाने में सक्षम"** बनाकर शिक्षित कर सकता है और सिर्फ ऐसी समझदारी के साथ ही सर्वहारा वर्ग "अपने-आप में-वर्ग" ("क्लास-इन- इटसेल्फ") की स्थिति से आगे बढ़ जाता है और "अपने-लिए-वर्ग" ("क्लास- फॉर-इटसेल्फ") होने की स्थिति में आ जाता है। जाहिर है कि हमारे देश में, यदि समग्रता में सर्वहारा वर्ग की बात की जाये, तो यह काफी पहले ही "अपने-आप में-वर्ग" की स्थिति को पार करके "अपने-लिए-वर्ग" की स्थिति में पहुंच चुका है – लेकिन यदि इस वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति की बात की जाये तो उसके लिए यह हर हमेशा ज़रूरी है कि वह खुद को मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुड. विचारधारा से लैस करे और निम्नलिखित "तीन समझदारियों" को गहरा बनाये:

पहला, उसे पूंजीवादी समाज के सारतत्व की अपनी समझदारी गहरी बनानी चाहिए। मार्क्सवाद- लेनिनवाद-माओ त्से-तुड. विचारधारा के हथियार के बिना हमारे कामरेड-गण परिघटनाओं का केवल एकपक्षीय ज्ञान ही हासिल कर सकते हैं और समाज में विद्यमान सम्बन्धों की केवल वाह्य प्रतीति (ऊपरी रूप – अनु.) को ही देख सकते हैं। और अधिक व्यावहारिक धरातल पर इसे समझा जाये। जिन स्थितियों में समाजवाद लगातार विजय की ओर आगे बढ़ रहा है और पूंजीवाद लगातार क्षरित और विघटित हो रहा है, उनमें बुर्जुआ वर्ग के धूर्त प्रतिनिधि अपनी असली प्रकृति को, यानी सर्वहारा अधिनायकत्व को उखाड़ फेंकने और पूंजीवाद की पुनर्स्थापाना करने के अपने उद्देश्य को, ढंकने की नीयत से, विभिन्न रूपों में नकली समाजवाद और नकली कम्युनिज़्म को प्रस्तुत करने में लगातार सक्षम बने हुए हैं। यही कारण है कि, अपने अध्ययन में और अपने व्यवहार में, हमें पूंजीवाद की सड़ी-गली स्थिति के बारे में अपनी समझदारी लगातार मजबूत बनानी होगी, समाजवाद को पूरे दिल से प्यार करना होगा तथा उसका निर्माण करना होगा।

दूसरा, उसे शोषण के उन सम्बन्धों के बारे में, जो सामाजिक वर्गों के बीच मौजूद होते हैं, अपनी समझदारी गहरी बनानी चाहिए। हमारे बहुतेरे कामरेडों ने पार्टी के लिए और समाजवाद के लिए असीम प्यार दिखलाया है और उनमें बुनियादी वर्ग-भावनाएं मौजूद हैं जो बहुत अच्छी चीज़ है। लेकिन मार्क्सवाद- लेनिनवाद-माओ त्से-तुड. विचारधारा के हथियार बिना, यदि ये कामरेड सिर्फ वर्ग-भावनाओं से ही तसल्ली किये रहेंगे, तो उन समयों में, जब वर्ग-संघर्ष और दो लाइनों का संघर्ष बहुत जटिल हो जाता है, उनके धोखा खा जाने और अपनी दिशा खो देने का खतरा बना रहेगा। यही वजह है कि, पूरे संघर्ष के दौरान, समाजवाद की ऐतिहासिक अवधि में वर्ग-संघर्ष के नियमों और अभिलाक्षणिकताओं की और गहरी समझदारी हासिल करने के लिए तथा इस अवधि के लिए पार्टी की बुनियादी लाइन को मजबूती से पकड़ने के लिए, हमें मनोयोग के साथ मार्क्सवाद-लेनिनवाद- माओ त्से-तुड. विचारधारा का अध्ययन करना होगा।

तीसरा, उसे सर्वहारा वर्ग के ऐतिहासिक कार्यभारों के बारे में अपनी समझदारी गहरी बनानी चाहिए। ये ऐतिहासिक कार्यभार है, सभी शोषक वर्गों और शोषण की सभी व्यवस्थाओं को जड़मूल से समाप्त कर देना, तथा समूची दुनिया में कम्युनिज़्म लाना। खुद को मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुड. विचारधारा से लैस करने और समस्याओं को समूचे सर्वहारा वर्ग के हित तथा कम्युनिज़्म की स्थापना के महान लक्ष्य के स्थिति-बिन्दु से देखने के बाद ही हम उस ऐतिहासिक ज़िम्मेदारी के प्रति सचेत होने में सक्षम हो सकेंगे, जो हमें उठानी है। केवल तभी हम इस तथ्य को पकड़ने में सक्षम हो सकेंगे कि हम ही इतिहास के स्वामी और निर्माता हैं और केवल तभी हम लगातार और हर हमेशा क्रान्ति करने में तथा कम्युनिज़्म की स्थापना के लिए संघर्ष में सक्षम बने रह पायेंगे।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुड. विचारधारा तेज़ धार वाली "तलवार" है जिससे हमारी पार्टी सभी अवसरवादियों की, सभी संशोधनवादियों की, आलोचना करती है और उन पर विजय प्राप्त करती है। मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुड. विचारधारा सर्वहारा संघर्ष का विज्ञान है। इसके उसूलों का एक स्पष्टतः अभिपुष्ट पार्टी-चरित्र है। यह खुले तौर पर स्वयं को सर्वहारा क्रान्तिकारी व्यवहार की सेवा में और सर्वहारा वर्ग के बुनियादी हितों की हिफाजत में सन्नद्ध घोषित करता है। अपनी विचारधारात्मक शुद्धता को बनाये रखने के लिए और हमेशा सही रास्ते पर आगे बढ़ते रहने के लिए एक सर्वहारा राजनीतिक पार्टी को बुर्जुआ वर्ग और सभी शोषक वर्गों की विचारधारा, और साथ ही सभी अवसरवादी तथा संशोधनवादी चिन्तन प्रवृत्तियों के विरुद्ध संघर्ष करते रहना चाहिए। इस विराट कार्यभार को पूरा करने के लिए, मार्क्सवाद- लेनिनवाद-माओ त्से-तुड. विचारधारा की तेज धार वाली तलवार का इस्तेमाल करते हुए, देश के भीतर और बाहर के अवसरवादियों एवं वर्ग-शत्रुओं द्वारा प्रचारित सभी प्रतिक्रियावादी चिन्तन प्रवृत्तियों को लगातार बेनकाब करते रहना तथा उनकी आलोचना करते रहना ज़रूरी है। सोवियत संशोधनवादियों के गद्दार गुट ने मार्क्सवाद-लेनिनवाद के साथ पूरी तरह से विश्वासघात करने के बाद एक समाजवादी देश को एक सामाजिक-साम्राज्यवादी देश में बदल डाला है। ख्रुश्चोव-ब्रेझनेव गुट अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के इतिहास का सबसे बड़ा विश्वासघाती गुट है; यह अपराधियों का एक ऐतिहासिक गिरोह है जिसके अनगिनत अपराधों को कभी भी माफ़ नहीं किया जा सकता। मार्क्सवाद-लेनिनवाद क लड़ाकू परचम को ऊंचा उठाते हुए हमारी पार्टी ने सोवियत गद्दार संशोधनवादियों के गुट के विरुद्ध निर्मम युद्ध का उद्घोष कर दिया है और पूरी दुनिया के समूचे क्रान्तिकारी जनगण के सामने सामाजिक साम्राज्यवाद के गुर्राते चेहरे को बेनक़ाब करके मार्क्सवाद-लेनिनवाद की शुद्धता की हिफाजत की है। मार्क्सवाद-लेनिनवाद- माओ त्से-तुड. विचारधारा का, और साथ ही पार्टी की बुनियादी लाइन का विरोध करते हुए, लिन प्याओ पार्टी-विरोधी गुट ने, हमारे देश में समाजवादी व्यवस्था को बदल डालने, पूंजीवाद की पुनर्स्थापना कर देने और हमारे देश को संशोधनवादी सोवियत सामाजिक साम्राज्यवाद का एक उपनिवेश बना देने के उद्देश्य से प्रतिक्रान्तिकारी सत्तापलट का सूत्रपात किया था। लेकिन, अध्यक्ष माओ के नेतृत्व में, मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुड. विचारधारा से लैस समूची पार्टी, समूची सेना और समूची जनता ने विश्वासघातियों और देश के गद्दारों के इस गिरोह की जड़ों को उजागर करते हुए उनके प्रतिक्रान्तिकारी षडयन्त्र को तथा उस संशोधनवादी लाइन की धुर-दक्षिणपंथी प्रकृति को बेनक़ाब कर दिया जिसे वे अमल में ला रहे थे। उन्होंने खुद ही अपनी गर्दन तोड़ ली और उनका शर्मनाक अंत हुआ।

ऊपर जो कहा गया है, उसके आधार पर हम देख सकते हैं कि सर्वहारा अधिनायकत्व का निर्माण करने में मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुड. विचारधारा का बुनियादी महत्व है। जैसा कि लेनिन ने बहुत सटीक ढंग से कहा है: **"क्रान्तिकारी सिद्धान्त**

(पेज 10 पर जारी)

फाजिल अनाज भूख-बेकारी की त्रासदी और अंत्योदय अन्न योजना का नाटक

(बिगुल प्रतिनिधि)

दिल्ली। पिछले 27 मार्च को एक प्रेस कांफ्रेंस में केन्द्रीय खाद्य, उपभोक्ता मामले और सार्वजनिक वितरण मंत्री शान्ता कुमार ने एक विचित्र लगने वाला पर सत्य बयान दिया कि "देश में गेहूं उत्पादन की स्थिति स्वाभिमानपूर्ण लेकिन चिन्ताजनक है।" यहीं पर उन्होंने यह जानकारी भी दी कि अगले वित्त वर्ष (अप्रैल-2001, मार्च-2002) में 50 लाख टन गेहूं निर्यात का लक्ष्य रखा गया है और 31 मार्च 2001 को समाप्त होने वाले वित्त वर्ष में 20 लाख टन गेहूं निर्यात करने का लक्ष्य पूरा कर लिया जायेगा।

बाज़ार और मुनाफे के निर्मम तर्क को न समझने वाले आम आदमी के लिए शान्ता कुमार का बयान मजाकिया लग सकता है कि "स्वाभिमानपूर्ण" और "चिन्ताजनक" स्थितियां एक साथ कैसे हो सकती हैं। लेकिन इस बयान में पूंजीवादी उत्पादन का वह "घृणित क्षुद्र रहस्य" छिपा हुआ है कि आखिर जब सरकारी गोदामों में अनाज सड़ रहे हैं और इसे खाली करने के लिए गेहूं का निर्यात किया जा रहा है तो सरकार इसे ग़रीबों में बांटकर अपना चेहरा गरीबपरवर क्यों नहीं बना ले रही है? आखिर जब अनाज इफ़रात में है तो भूख क्यों है? सरकार को चावल बेचने के लिए पंजाब के किसानों को आन्दोलन करने या आत्महत्या के रास्ते पर क्यों चलना पड़ता है?

इफ़रात अनाज और देश में फैली भूख-तबाही-बेकारी के रिश्ते का रहस्य उस पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली में छुपा हुआ है जिसमें इंसान की ज़रूरत को पूरा करने के लिए चीज़ें नहीं पैदा की जातीं बल्कि बाजार में बेचकर मुनाफ़ा कमाने के लिए माल पैदा किया जाता है। माल उत्पादन की इस प्रणाली में किसी किस्म के मानवतावाद की कोई गुंजाइश नहीं है।

भूख शान्त करने के लिए बाज़ार से अनाज रूपी माल खरीदना ज़रूरी है। बाज़ार चाहे नियंत्रित हो या खुला – माल-उत्पादन का नियम काम करता रहता है। माल उत्पादन का नियम कहता है कि कोई माल मुफ्त में नहीं बांटा जा सकता। माल उत्पादक को बाज़ार से लागत ही नहीं मुनाफा भी चाहिए। अगर यह नहीं मिलता है तो माल पड़ा रह जायेगा। देश में अनाज रूपी जो माल पैदा हो रहा है अगर वह मुनाफे पर नहीं बेचा जायेगा तो मुफ्त बांटा भी नहीं जायेगा। गोदामों में सड़ जायेगा, चूहे खा जायेंगे या समुद्र में फेंक दिया जायेगा। कुछ अर्सा पहले जब वित्त मंत्री यशवन्त सिन्हा से एक पत्रकार ने पूछा कि गोदामों में सड़ रहा अनाज ग़रीबों में बांट क्यों नहीं दिया जाता तो उन्होंने बाज़ार और मुनाफे का यही हृदयहीन तर्क समझाते हुए उस पत्रकार से कहा था कि सरकारी गोदामों में अनाज लाने के लिए ढुलाई और अनाज के रखरखाव पर सरकार जो खर्चा कर रही है वह कहां से आयेगा?

सरकार के हिसाब-किताब के अनुसार अगर सरकारी गोदामों में 40 लाख टन गेहूं पड़ा रहे तो इसे सुरक्षित भण्डार (बफर स्टॉक) माना जाना चाहिए। यानी देश की सार्वजनिक वितरण प्रणाली को गेहूं सप्लाई करने के लिए इतना भण्डार पर्याप्त है। लेकिन इस समय (मार्च 2001) में एफ.सी. आई. के गोदामों में इस सुरक्षित भण्डार से पांच गुने से भी अधिक कुल 233 लाख टन गेहूं अटा पड़ा है। इसमें से 25 लाख टन से अधिक इस कदर सड़ चुका है कि यह पशुओं को खिलाने लायक भी नहीं बचा है। सरकार इसे समुद्र में फेंकने का मन बना चुकी है। यह फाजिल गेहूं गोदामों में इसलिए पड़ा रह गया क्योंकि जबसे आर्थिक "सुधारों" की प्रक्रिया चालू हुई है तबसे राज्य सरकारें एफ.सी. आई. से लगातार कम गेहूं खरीद रही हैं। पिछले दस सालों में यह खरीदारी इसलिए कम होती चली गयी है क्योंकि सरकार ने अपने खजाने का घाटा कम करने के नाम पर सार्वजनिक वितरण प्रणाली के दायरे से धीरे-धीरे तथाकथित "ग़रीबी रेखा से ऊपर" वालों को बाहर कर दिया है। "ग़रीबी रेखा से नीचे" की जो आबादी अब राशन से अनाज खरीदने की हकदार है वह भी अब पहले जितना नहीं खरीद रही है। कुल मिलाकर हुआ यह कि राशन के कोटेदार कम राशन उठा रहे हैं, इसलिए राज्य सरकारें भी एफ.सी.आई. से कम खरीद रही हैं और इसका नतीजा यह है कि एफ.सी.आई. के गोदामों में अनाज भरता चला गया है। एक आंकड़े के अनुसार पिछले दस सालों में अनाज की निकासी कम होते-होते पिछले साल 40 फीसदी तक कम हो चुकी है। 1992 के अन्त में सरकारी गोदामों में जहां कुल लगभग 90 लाख टन गेहूं था वह आज 233 लाख टन तक जा पहुंचा है।

सरकार ने इस फाजिल अनाज को गोदामों से बाहर निकालने के लिए पिछले साल 11 जुलाई को खुले बाज़ार में गेहूं 900 रुपये प्रति कुन्तल (जिस भाव पर राशन से ग़रीबी रेखा के ऊपर वालों को गेहूं मिलता था) के बजाय 750 रुपये प्रति कुन्तल के भाव बेचने का ऐलान किया। लेकिन इस पर भी जब कोई व्यापारी खरीदने नहीं आया तो उसने फिर 650 रुपये में बेचने की पेशकश की, लेकिन फिर भी बहुत ज़्यादा गेहूं नहीं बिक सका। व्यापारी भी माल तभी उठायेंगे जब बाज़ार में मांग होगी और पिछले दस साल में भारी आबादी के कंगाल हो जाने के कारण मांग लगातार घटती ही गयी है।

घरेलू बाज़ार में गेहूं बेचने में नाकाम रहने पर सरकार ने गेहूं का निर्यात कर गोदाम खाली करने और विदेशी मुद्रा कमाने की योजना बनायी है, वह भी घरेलू बाज़ार से भी कम कीमत पर 430 रुपये प्रति कुन्तल के भाव से साफ है कि सरकार एक तरफ सब्सिडी (सरकारी इमदाद) कम कर ग़रीबों के मुंह का निवाला छीन रही है, वहीं दूसरी तरफ उसी पैसे से देशी-विदेशी व्यापारियों की तिजोरियां भर रही है। गेहूं की सरकारी खरीद और रखरखाव के खर्चे की लागत प्रति

(पेज 10 पर जारी)

(विशेष संवाददाता)

भारत अल्युमिनियम कम्पनी (बाल्को) का सौदा

शासकों की नंगई का एक और नमूना

नई दिल्ली। तमाम नियम-कानूनों की धज्जी उड़ाते हुए वाजपेयी सरकार ने जिस तरह भारत अल्युमिनियम कम्पनी (बाल्को) को स्टरलाइट कम्पनी के हाथों रद्दी के भाव बेच दिया वह इस बात को उजागर करने का केवल एक और नमूना है कि निजी पूंजी की वफादारी में वह कुत्तों से भी बढ़कर है। सौदे को बचाने के लिए केन्द्र सरकार की नंगई और छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री अजित जोगी की फर्जी जंग के बीच रेफरी बनकर सुप्रीम कोर्ट ने जो भूमिका निभायी, वह इस बात का एक और उदाहरण है कि पूंजीवादी न्यायपालिका का सबसे अहम काम पूंजी की सेवा करना है। बाल्को के निजीकरण के समूचे प्रकरण ने यह साफ कर दिया है कि आर्थिक "सुधारों" के दूसरे दौर में शासक वर्ग अब पूरी नंगई पर आमादा हो चुका है।

राज्य सभा में बाल्को सौदे के खिलाफ गर्जन-तर्जन करने के बाद तृणमूल कांग्रेस, द्रमुक और शिवसेना ने जिस तरह पलटी खायी वह भी इसी बात का एक और नमूना था कि देशी-विदेशी मुनाफाखोरों की सेवा में वे वाजपेयी सरकार के साथ मुस्तैदी से खड़े हैं। एक बार फिर उन्होंने अपना असली चेहरा दिखा दिया। अपनी चुनावी राजनीति की मजबूरियों और लूट के माल के बंटवारे के लिए वे कभी-कभार लाल-पीले भले हो लें, लेकिन जब पूंजीपतियों के हितों से जुड़ा कोई अहम मसला अटक जायेगा तो वे दांत निपोरे हुए वाजपेयी सरकार की बगल में खड़े हो जायेंगे।

सरकार ने डंके की चोट पर ऐलान कर दिया है कि सरकारी उपक्रम घाटे में हों या फायदे में सबका निजीकरण किया जायेगा। इसी ऐलान को अमल में लाते हुए बाल्को को बेचा गया है। मेहनतकश जनता के खून-पसीने से 1965 में खड़ी की गयी सार्वजनिक क्षेत्र की यह महत्वपूर्ण कम्पनी (बाल्को) पिछले बारह सालों से मुनाफे में चल रही थी। इसके निजीकरण की योजना 1996 में ही, संयुक्त मोर्चा सरकार के समय बना ली गयी थी, जब इस सरकार द्वारा गठित विनिवेश आयोग ने कम्पनी के 40 प्रतिशत शेयरों को बेच देने की सिफारिश की थी। तीन साल पहले जब वाजपेयी सरकार बनी तभी से वह इसका सौदा पटाने की फिराक में थी। कम्पनी के निजीकरण के खतरे को भांपते हुए इसमें कार्यरत सात हजार से अधिक मज़दूरों-कर्मचारियों ने पिछले दो साल से **बाल्को बचाओ संघर्ष समिति** बनाकर संघर्ष की शुरुआत कर दी थी। लेकिन, हर हालत में हर कीमत पर बाल्को को बेच देने की ताक में बैठी वाजपेयी सरकार ने आखिरकार पिछले एक मार्च को सौदा पटाते हुए सिर्फ 551 करोड़ 50 लाख रुपये में बाल्को के 51 प्रतिशत शेयर स्टरलाइट कम्पनी के मालिकों को सौंप दिये। जबकि एक मोटे आकलन के अनुसार बाल्को की 2060 एकड़ भूमि, 270 मेगावाट की बिजली उत्पादन इकाई और मुख्य उत्पादन इकाई की कीमत 5000 करोड़ रुपये से भी अधिक है। इसके अलावा 460 करोड़ रुपये की आरक्षित नकदी भी कम्पनी के खाते में जमा है। सौदे के बाद इसके भी आधे की मालिक स्टरलाइट हो गयी। इस तरह बाल्को की आधी सम्पत्ति स्टरलाइट को सिर्फ 231 करोड़ 50 लाख रुपये में ही मिल गयी। लेकिन इसके बावजूद बेहयाई का आलम यह है कि वाजपेयी इसे "अच्छा सौदा" मानते हैं।

सौदे के बाद जब बाल्को के मैनेजमेंट का अधिकार स्टरलाइट के मालिकों को मिल गया तो 3 मार्च से बाल्को के मज़दूरों-कर्मचारियों ने बेमियादी हड़ताल शुरू कर दी। सरकार और नये मालिकान यह आश्वासन लगातार दे रहे हैं कि किसी भी कर्मचारी-मज़दूर की छंटनी नहीं की जायेगी, लेकिन हड़ताली मज़दूर देश के अन्य हिस्सों में निजीकरण के अनुभवों से जान चुके हैं कि ये आश्वासन पूरी तरह झूठे हैं। इसलिए, उन्होंने जीवन-मरण का संघर्ष बनाकर लड़ाई शुरू कर दी। आसपास रहने वाली आदिवासी आबादी भी उनके साथ आ खड़ी हुई। इसलिए, इस संघर्ष की आंच में अपनी सियासी रोटियां सेंकने के लिए अजित जोगी सहित सभी गैर भाजपा पार्टियां कूद पड़ीं और बाल्को को बचाने के लिए हुआं-हुआं करने लगीं। छत्तीसगढ़ में अपनी सियासत का रंग जमाने के लिए जोगी ने बगावत का झंडा उठाकर एक फर्जी जंग छेड़ दी। इन हालात में कहीं आर्थिक "सुधारों" के दूसरे दौर की गाड़ी पटरी से न फिसल जाये इसलिए केन्द्र सरकार ने आखिरकार सुप्रीम कोर्ट का शरणगत होने का रास्ता चुना।

झूठे तथ्यों के आधार पर केन्द्र सरकार द्वारा दायर याचिका पर फैसला सुनाते हुए सुप्रीम कोर्ट ने पिछले सात मार्च को एक फरमान जारी किया कि राज्य सरकार काम पर जाने के इच्छुक कर्मचारियों की सुरक्षा की गारण्टी करे, बिजली-पानी सहित आवश्यक सुविधाओं की सप्लाई में कोई अड़ंगा न डाले और नये मैनेजमेंट को पूरा सहयोग करे। इस फरमान के जरिये सुप्रीम कोर्ट ने एक बार फिर पूंजी के हितों की हिफाजत करते हुए उसी तरह हड़ताल तोड़ने की कोशिश की जिस तरह उसने पिछली डाक हड़ताल के समय किया था। अदालती फरमान जोगी का जोश ठंडा करने के लिए काफी था। आखिरकार जोगी और उनकी पार्टी पूंजीवादी व्यवस्था की एक चौकस पहरेदार है, उसके कायदे-कानूनों की चौकस हिमायती है, सो वह अदालत की नाफरमानी भला कैसे कर सकती थी। वैसे भी, जोगी और उनकी पार्टी को निजीकरण से कोई गुरेज कभी नहीं रहा। आज भी नहीं है। बाल्को मामले में भी जोगी की शिकायत सिर्फ यह है कि सौदा गैरकानूनी ढंग से हुआ है और इसमें घूस खायी गयी है। और फिर कौन नहीं जानता कि कांग्रेस तो निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों की सूत्रधार रही है। लेकिन, चूंकि बाल्को के मज़दूरों-कर्मचारियों का संघर्ष अब भी जारी है इसलिए शहीदी मुद्रा में जोगी, उनकी पार्टी और संसदीय वामपंथियों सहित सभी गैर भाजपा पार्टियों का हुआं-हुआं करना जारी है।

तरह-तरह के चारे फेंकने और तीन-तिकड़म के बावजूद जब स्टरलाइट के मालिकान हड़ताल नहीं तुड़वा सके तो उन्होंने 10 मार्च को गैरकानूनी तालाबन्दी घोषित कर दी है और अब इस "अच्छे सौदे" को बचाने के लिए वाजपेयी सरकार नये मालिकों और हड़ताली मज़दूरों के बीच बिचौलिया बनकर समझौता कराने की चाल खेल रही है। मज़दूरों ने इस चाल को भांपते हुए नये मालिकों के साथ किसी भी तरह की वार्ता से फिलहाल इन्कार कर दिया है।

फिलहाल, **बाल्को बचाओ संयुक्त अभियान समिति** के झण्डे तले मज़दूरों का संघर्ष जारी है और आगामी 26 अप्रैल को सभी सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की हड़ताल की तैयारी चल रही है, लेकिन बाल्को सौदा रद्द हो पायेगा, इसकी सम्भावना अब बिल्कुल नहीं के बराबर दीख रही है। इसका सबसे अहम कारण यह है कि यह संघर्ष भी गैर भाजपा चुनावी पार्टियों से नत्थी ट्रेड यूनियन नेताओं की अगुवाई में ही चल रहा है। निजीकरण के खिलाफ अब तक लड़ी गयी लड़ाइयों का अनुभव यही है कि आम मज़दूर-कर्मचारी तो अन्तिम दम तक लड़ने के लिए खड़ा हुआ है, लेकिन उनके नेताओं ने इन संघर्षों का इस्तेमाल सिर्फ अपना सियासी वजन बढ़ाने के लिए किया है और फैसलाकुन मुकाम पर पीठ में छुरा भोंका है। इस बार ऐसा नहीं होगा, इसकी कोई वजह अभी नहीं पैदा हुई है। इसलिए इस आन्दोलन को लेकर भी वही आशंकाएं पैदा होती हैं, जैसा निजीकरण के खिलाफ चली पिछली लड़ाइयों का हुआ है – यानी एक और पराजय।

बाल्को के मज़दूर जीतते हैं या हारते हैं, यह जल्दी ही तय हो जायेगा लेकिन एक बात तय है कि यह न तो मज़दूर वर्ग की आखिरी हार होगी और न ही शासक वर्ग की आखिरी जीत। इन तमाम हारों से मज़दूर वर्ग नये-नये सबक हासिल कर रहा है। इनमें सबसे कीमती सबक तो यही है कि आज मज़दूर वर्ग को नये क्रान्तिकारी नेतृत्व की ज़रूरत है। जब यह नया नेतृत्व उभरेगा तभी शासकों को नये सिरे से चुनौती दी जा सकेगी। आज सभी सचेत मज़दूरों के सामने यही सबसे अहम जिम्मेदारी है। सोचने का यही सबसे अहम मुद्दा है – नये क्रान्तिकारी नेतृत्व को कैसे तैयार किया जाये, मज़दूर आन्दोलन को क्रान्तिकारी धार कैसे दी जाये। और जब सोचने की शुरुआत हो जाती है तो रास्ते भी निकल ही आते हैं।

जनमुक्ति की अमर गाथा: चीनी क्रान्ति की सचित्र कथा (भाग-तेरह)

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का प्रथम ज्वार : "स्वर्ग" पर धावा एक बार फिर

1. 18 अगस्त, 1966 को तियेन एन-मेन चौक में दस लाख रेड गार्डों की रैली का स्वागत करते हुए माओ त्से-तुङ

(1)

5 अगस्त, 1966 को पार्टी में शीर्ष स्थानों पर काबिज संशोधनवादियों के विरुद्ध सीधे संघर्ष का आह्वान करते हुए माओ ने स्वयं एक बड़े चित्राक्षरों वाला पोस्टर (बिग कैरेक्टर पोस्टर) जारी किया जिसका शीर्षक था: "बुर्जुआ हेडक्वार्टर को तबाह कर दो।" उन्होंने 25 मई को पीकिङ.विश्वद्यिालाय में छात्रों द्वारा लगाये गये 'बड़े चित्राक्षर पोस्टर' की प्रशंसा की और लिखा कि, "पिछले लगभग 50 दिनों में, केन्द्र से लेकर स्थानीय स्तर तक के कुछ नेतृत्वकारी कामरेडों ने एकदम विपरीत ढंग से काम किया है। बुर्जुआ वर्ग की प्रतिक्रियावादी अवस्थिति अपनाकर उन्होंने एक बुर्जुआ अधिनायकत्व लागू किया है और सर्वहारा वर्ग की महान सांस्कृतिक क्रान्ति के ज्वार को दबाने की कोशिश की है।"

तीन दिनों बाद, 8 अगस्त को माओ के नेतृत्व में पार्टी की केन्द्रीय कमेटी ने 'महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति से सम्बन्धित फैसले' शीर्षक वह ऐतिहासिक दस्तावेज जारी किया जो आगे चलकर सोलह-सूत्री सर्कुलर नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस दस्तावेज में पुराने विचारों, पुरानी संस्कृति एवं आचार-व्यवहार और शोषक वर्गों की उन आदतों के विरुद्ध, जो अभी भी जनता की जीवन व चिन्तन शैली में मौजूद थे, संघर्ष की जरूरत को रेखांकित किया गया था। दस्तावेज में इस बात पर विशेष जोर दिया गया था कि वर्तमान समय में सत्ता पर काबिज पूंजीवादी पथगामियों के विरुद्ध संघर्ष और उनका तख्ता पलट देना सांस्कृतिक क्रान्ति का पहला लक्ष्य है। इसके अन्य बुनियादी लक्ष्य इस प्रकार उल्लिखित किये गये थे: "प्रतिक्रियावादी पूंजीवादी अकादमिक अधिकारियों और पूंजीवादी तथा शोषक वर्गों की अन्य सभी विचारधाराओं की आलोचना करना और उन्हें उखाड़ फेंकना, और शिक्षा, साहित्य-कला और ऊपरी ढांचे के जो भी हिस्से समाजवादी आर्थिक आधार के अनुरूप नहीं हैं, उनका रूपान्तरण करना ताकि समाजवादी व्यवस्था के सुदृढ़ीकरण एवं विकास में मदद हो सके।

(2)

16-सूत्री सर्कुलर सांस्कृतिक क्रान्ति का 'मैग्ना कार्टा' (इंग्लैण्ड की बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के इतिहास का प्रसिद्ध दस्तावेज) था, जिसे जनता की जितनी व्यापक आबादी ने जितनी गहराई के साथ पढ़ा, वैसा इतिहास में पहले कभी भी नहीं हुआ था। इस दस्तावेज को रेड गार्डों ने पूरे देश में पहुंचा दिया और लोगों ने गांव-गांव में बैठकर इसे पढ़ा।

इसके साथ ही, समस्याओं की जांच-पड़ताल और समाजवादी शिक्षा आन्दोलन को नेतृत्व देने के लिए केन्द्रीय तत्वावधान में गठित कार्य-दलों को भंग कर दिया गया और पहलकदमी सांस्कृतिक क्रान्ति की समितियों को दे दी गयी जिनके सदस्य स्थानीय स्तर पर जनवादी तरीके से चुने जाते थे।

16-सूत्री सर्कुलर जारी होने के दस दिनों बाद, 18 अगस्त को पीकिङ. में दस लाख रेड गार्डों की एक विराट रैली तिएन एन मेन चौक पर हुई। तब दुनिया को पहली बार रेड गार्डों के बारे में पता चला। माओ ने स्वयं जन मुक्ति सेना की वर्दी पहनकर और बांह पर रेड गार्डों वाली पट्टिका लगाकर रेडगार्ड बटालियनों की मार्च का निरीक्षण किया। अगले तीन महीनों के भीतर रेड गार्डों की ऐसी तीन रैलियां हुईं। उन सभी में दस-दस लाख रेड गार्डों ने भाग लिया। तीन महीनों के भीतर शिक्षण संस्थाओं के दो करोड़ लोगों ने खुद को रेड गार्ड दस्तों के रूप में संगठित कर लिया।

हालांकि 1966 में सांस्कृतिक क्रान्ति के जनज्वार का मुख्य केन्द्र पीकिङ. था और सर्वाधिक सक्रिय भूमिका छात्रों-युवाओं की थी, लेकिन अक्टूबर के महीने तक पूरा देश इसमें शामिल हो चुका था। करोड़ों आम लोग पूंजीवाद की वापसी को रोकने, क्रान्ति को गहरा बनाने और वर्गहीन समाज बनाने की दिशा में आगे बढ़ने जैसे विषयों पर बहस और संघर्ष में एक साथ जुटे हुए थे। करोड़ों लोग अपने भविष्य को समझने और तय करने के लिए जारी संघर्ष को सचेतन तौर पर चला रहे थे। वे यह सीख रहे थे कि पार्टी पर निगरानी कैसे रखी जाये, इसके "लाल" रंग को बरकरार रखने के लिए संघर्ष कैसे चलाया जाय और असरदार पदों पर काबिज जो लोग पूंजीवाद को वापस लाना चाहते हैं, उन्हें किस तरह बेनकाब किया जाये।

लेकिन विरोधी भी चुप नहीं थे। वे भी जवाबी हमले और खासकर षडयंत्र और भितरघात की कार्रवाई कर रहे थे क्योंकि वे जानते थे कि आम पार्टी कतारें, लाल सेना के आम सिपाही, व्यापक जनता का बहुलांश माओ के पीछे है और साथ ही दो करोड़ रेड गार्डों की नई, प्रचण्ड युवा शक्ति भी उनके साथ है। इसी शक्ति और साख के बल पर सांस्कृतिक क्रान्ति की नीतियां माओ ने पार्टी से पारित तो करा ली थीं पर शीर्ष पर स्थिति यह थी कि पार्टी की केन्द्रीय कमेटी की पोलित ब्यूरो की स्थायी समिति के सात सदस्यों में से तीन ही उनके पक्ष में थे। चार विरोधियों में चीन लोक गणराज्य के अध्यक्ष ल्यू शाओ-ची और पार्टी के महासचिव देङ. सियाओ पिङ.भी थे। पीकिङ. स्थित केन्द्रीय पार्टी प्रेस और प्रचार विभाग दक्षिणपंथियों के हाथ में था। इसके अतिरिक्त उन भितरघातियों की भी कमी नहीं थी, जो सांस्कृतिक क्रान्ति का जोरदार समर्थन करते हुए शीर्ष पर हावी होना चाहते थे और जो रेड गार्डों और क्रान्तिकारी युवाओं के बीच लगातार मध्यवर्गीय उतावलेपन और अतिवामपंथी अतिरेक के भटकावों को हवा दे रहे थे। जैसे माओ का लगातार इस बात पर जोर था कि 90 प्रतिशत पार्टी कार्यकर्ता सही हैं और गलत तत्व सिर्फ दस प्रतिशत हैं। पर कुछ लोग ज़्यादा लोगों को हमले का निशाना बनाकर सांस्कृतिक क्रान्ति की ताकतों को अलग-थलग और बदनाम करना चाहते थे। माओ का लगातार जोर था कि गलतियां मानने वालों को सुधरने का और पुनर्शिक्षित होने का अवसर देना चाहिए। लेकिन कुछ लोग प्रतिशोधी नज़रिया अपना रहे थे। इन भितरघातियों में लिन प्याओ और छच पो ता अग्रणी थे जिन्होंने सांस्कृतिक क्रान्ति के प्रथम ज्वार के दौर (1966-69) के बीच काफी नुकसान भी पहुंचाया जिसका खामियाजा बाद में भी भुगतना पड़ा।

2. सांस्कृतिक क्रान्ति के आगे बढ़ते ही पूरे चीन के गांवों-शहरों में लोग पूंजीवाद की वापसी रोकने और क्रांति को आगे बढ़ाने से सम्बन्धित गंभीर प्रश्नों पर बहस एवं विचार-विमर्श में शामिल हो गये

3. क्रान्तिकारी 'बिग कैरेक्टर पोस्टर' लगाते एक फैक्ट्री के मजदूर

(3)

दिसम्बर, 1966 में माओ ने सांस्कृतिक क्रान्ति को कृषि और औद्योगिक क्षेत्रों तक फैला देने का आह्वान किया। "क्रान्ति पर पकड़ बनाये रखने और उत्पादन को आगे बढ़ाने" के लिए किसानों और मज़दूरों के लिए नये निर्देश जारी किये गये।

क्रान्ति के सन्देश को कारखाने-कारखाने तक पहुंचाने में रेड-गार्डों ने एक बार फिर पहलकारी भूमिका निभाई। सुनियोजित बड़ी बैठकों के अतिरिक्त, कभी-कभी बिना किसी पूर्व-सूचना के युवा रेड गार्ड कारखानों में पहुंचकर छोटी-छोटी राजनीतिक बैठकें करते थे और मज़दूरों से चीन में समाजवाद को आगे ले जाने की समस्याओं और राजीनीतिक लाइन से लेकर कारखानों के भीतर नौकरशाही जैसी समस्याओं पर बातचीत करते थे। जल्दी ही मज़दूरों की पहलकदमी जाग उठी और कारखानों में भी मज़दूर खुद ही तैयार करके 'बिग कैरेक्टर पोस्टर' लगाने लगे, पर्चे निकालने लगे और मीटिंगें करके पार्टी एवं कारखाना-तंत्र के नौकरशाहों के खिलाफ आवाज़ उठाने लगे। इस राजनीतिक संघर्ष के साथ ही 'क्रान्ति पर पकड़ बनाये रखो और उत्पादन को आगे बढ़ाओ' नारे पर अमल करते हुए उत्पादन कार्य को भी मज़दूरों ने जबर्दस्त गति दी। सोवियत संघ के 'सुब्बोतनिक' और 'स्ताखानोववादी आन्दोलन' की कड़ी को आगे बढ़ाते हुए मज़दूर बिना बोनस या ओवरटाइम के लोभ-लालच के उत्पादन को जबर्दस्त गति दी और इसके लिए नई-नई तकनीकें भी ईजाद कीं।

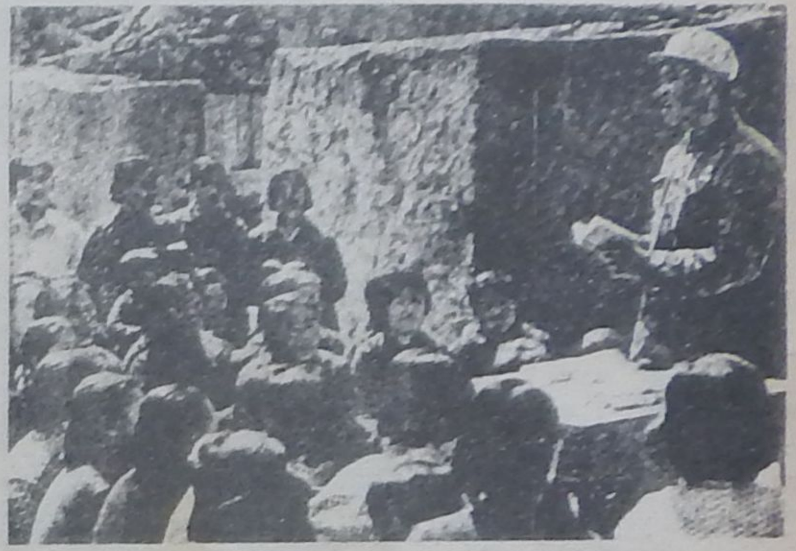

4. मजदूरों के बीच माओ की रचनाओं के बारे में बताता जन मुक्ति सेना का एक सिपाही

लाखों की तादाद में छात्र विश्वविद्यालयों-कॉलेजों-स्कूलों से निकलकर गांवों में गये। वहां वे जनकम्यूनों में किसानों के साथ उत्पादन की कार्रवाई में भाग लेने के साथ ही उन्हें क्रान्ति को आगे बढ़ाने की समस्याओं और राजनीतिक संघर्ष के बुनियादी मुद्दों से किसानों को परिचित कराते थे, उनकी मीटिंगें करते थे और नौकरशाही, भ्रष्टाचार तथा पूंजीवादी नीतियों के विरुद्ध उनकी चेतना जागृत करते थे। देखते-ही-देखते पूरे देश की बहुसंख्यक किसान आबादी इस संघर्ष में सक्रिय हो गई और जन कम्यूनों की पूरी व्यवस्था और उन्नत समाजवादी उपक्रमों के रूप में संगठित होने लगी। इस मुहिम में छात्रों-युवाओं के सांस्कृतिक दस्तों और ऑपेरा टोलियों ने भी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और नई समाजवादी संस्कृति और चेतना को आम लोगों तक पहुंचाने का एक ऐसा प्रयोग सामने आया जैसा पहले कभी नहीं देखा गया था।

(4)

जनता की व्यापक पहलकदमी और भागीदारी पैदा होने के साथ ही दो लाइनों का संघर्ष अपने उग्रतम रूप में जा पहुंचा। पूंजीवादी पथगामियों ने अपने हमले तेज कर दिये। वे अब खुले

(शेष 8 पर जारी)

5. सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान तियेन एन-मेन चौक में रेड गार्ड्स

जनमुक्ति की अमर गाथा: चीनी क्रान्ति की सचित्र कथा (भाग-तेरह)

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का प्रथम ज्वार : "स्वर्ग" पर धावा एक बार फिर

(पृष्ठ 7 से आगे)

6. "जनता की सेवा करो" – सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान का एक चित्र

में आ चुके थे और यह अच्छा ही था क्योंकि जनता उनका असली रंग अब और साफ देख पा रही थी।

सांस्कृतिक क्रान्ति के देशव्यापी फैलाव के साथ ही उसका केन्द्र अब पीकिंङ से हटकर शंघाई चला गया था। बुर्जुआ हेडक्वार्टरों (जैसे, शंघाई नगर निगम पार्टी कमेटी, जिस पर दक्षिणपंथी हावी थे) को ध्वस्त करने तथा शहरों और प्रान्तों में पेरिस कम्यून जैसे सत्ता के अंग स्थापित करने के आहवान से संघर्ष ने नया रूप ले लिया। दक्षिणपंथियों ने मज़दूरों को अचानक बोनस देकर, तनख्वाहें बढ़ाकर तथा भेंट आदि तरह-तरह के लालच देकर उन्हें अपने पक्ष में लामबन्द करने और जवाबी हमला करने की कोशिश की, पर वे कामयाब नहीं हो सके। शंघाई पार्टी कमेटी ने केन्द्रीय कमेटी के 8 अगस्त'66 की बैठक के विवरण को दबा दिया। पर रेड गार्डों ने उसके बारे में शंघाई की जनता को बताया और उन्हें माओ के पोस्टर 'बुर्जुआ हेडक्वार्टर को उड़ा दो' की जानकारी भी दी। अक्टूबर 1966 की एक केन्द्रीय कमेटी बैठक में ल्यू शाओ-ची और देङ सियाओ पिङ ने अपनी आत्मालोचना करके बच निकलने की कोशिश की, पर कमेटी ने उसे स्वीकार नहीं किया।

शंघाई नगर निगम पार्टी कमेटी के नेताओं चेन और चाओ ने लाल मिलिशिया टुकड़ी संगठित की जिसने सांस्कृतिक क्रान्ति के समर्थकों के खिलाफ हिंसा को उकसाया, उन्होंने मज़दूरों को घूस दी, उत्पादन में बाधा पहुंचाई, यहां तक कि बिजली-पानी काट दिया और शहर का यातायात-परिवहन ठप्प करके अव्यवस्था फैलाई ताकि सांस्कृतिक क्रान्ति को बदनाम किया जा सके। मगर इससे मज़दूरों की निगाहों में वे और अधिक बदनाम हो गये। गोदी और रेलवे मज़दूर उस समय सत्ता पर कब्जा करने की आवश्यकता और शिद्दत से समझने लगे।

दक्षिणपंथी अपनी असलियत छुपाने के लिए सांस्कृतिक क्रान्ति और माओ का नाम और जोर-शोर से लेते हुए अपनी हरकतें जारी रखे हुए थे। इससे जगह-जगह लोग दिग्भ्रमित भी हो रहे थे। इस मुकाम पर माओ ने सही क्रान्तिकारी शक्तियों के पक्ष में जनमुक्ति सेना को लामबन्द करने का अहम फैसला लिया। जनवरी, 1967 में सत्ता पर कब्जा करने का अभियान शुरू हुआ। क्रान्तिकारी विद्रोहियों ने पहले दो प्रमुख दैनिक अखबारों को अपने नियंत्रण में ले लिया। इसके बाद उन्होंने रेलवे, पानी, बिजली आपूर्ति और बैंकों को भी अपने अधिकार में ले लिया। नगर-निगम सरकार के कार्य को विद्रोहियों के संचालन मुख्यालय ने सम्हाल लिया। विद्रोही क्रान्तिकारी संगठनों ने (उनकी संख्या 38 थी) शंघाई की जनता के नाम अपील निकालकर मज़दूरों के बीच अर्थवाद की घुसपैठ का प्रतिरोध करने और विद्रोहियों के क्रातिकारी मुख्यालय के साथ एकजुट होकर खड़ा हो जाने का आहवान किया। जन मुक्ति सेना की टुकड़ियां भी इस मुहिम में सक्रिय भागीदार थीं।

इस बीच सब कुछ पूरी तरह नियंत्रण में लेने से पहले केन्द्र के नेताओं ने विद्रोही संगठनों का महान संश्रय (संयुक्त मोर्चा) बनाना चाहा। चार कोशिशों के बाद फरवरी, 1967 में 38 संगठनों का महान संश्रय अस्तित्व में आया और एक क्रान्तिकारी कमेटी का निर्माण किया गया जिसमें तीन तरह के तत्व शामिल थे: नेतृत्वकारी कार्यकर्ता, जनमुक्ति सेना की इकाइयों के सांस्कृतिक क्रान्ति समर्थक सदस्य और विद्रोही समूहों के सदस्य जो स्वत:स्फूर्त रूप से आन्दोलन के दौरान उभरे थे।

7. फैक्ट्री में मजदूरों की एक सभा में पूंजीवादी पथगामियों की आलोचना

(5)

अप्रैल, 1967 तक सत्ता पर नीचे से जनता का नियंत्रण कायम करने की दिशा में महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल हो चुकी थी तथा करोड़ों जनता की पहलकदमी की जागृति और नई समाजवादी व्यवस्था के अंगों के जन्म लेने की प्रक्रिया गति पकड़ चुकी थी। अब एक नये दौर की शुरुआत हुई। यह "चीन के ख्रुश्चोव" की आलोचना और भण्डाफोड़ का दौर था। यहां अप्रत्यक्ष संकेत ल्यू शाओ-ची (हालांकि उनका नाम नहीं लिया गया) और उनकी राजनीतिक लाइन की ओर था। शंघाई में सत्ता पर कब्जा करने की बहस जारी रही और जुलाई, 1967 तक इनमें से कुछ ने हिंसक रूप ले लिया। इसका कारण यह था कि पूंजीवादी पथगामियों ने एक को दूसरे के खिलाफ उकसाया, बुरे तत्वों और भूतपूर्व मालिकों ने बदला लेने और अव्यवस्था फैलाने के मक़सद से विद्रोहियों के बीच घुसपैठ की और अनेक युवा विद्रोहियों में अनुभव और परिपक्वता की कमी ने इस अव्यवस्था को तूल दिया। इसके बावजूद कारखानों के उत्पादन में बहुत थोड़ी ही बाधा पहुंची।

अक्टूबर, 1967 में केन्द्रीय क्रान्तिकारी ग्रुप ने नारा दिया – "निजी हित के विरुद्ध संघर्ष करो और अपने मन से संशोधनवाद को मिटा दो।" इस आहवान से एक नई स्थिति विकसित हुई। सांस्कृतिक क्रान्ति आधार और ऊपरी ढांचे के समाजवादी रुपान्तरण की दृष्टि से और अधिक गहराई में चली गई। शिक्षा, सांस्कृतिक माध्यमों, मीटिंगों-बैठकों और सभी प्रचार माध्यमों के जरिए पार्टी कतारों और मेहनतकश अवाम को यह चेतना देने की मुहिम चलाई गई कि वर्ग समाज की देन – निजी हित और लोभ-लालच की संस्कृति एवं आदत को बदले बिना, 'स्व' के विरुद्ध लगातार संघर्ष किये बिना और जनता की विचारधारा को बदले बिना सांस्कृतिक क्रान्ति का सुदृढ़ीकरण नहीं किया जा सकता और पूंजीवाद तथा संशोधनवाद के बार-बार उभर आने तथा पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के खतरों का खात्मा नहीं किया जा सकता।

इस बीच 1967 के अंत तक, 'महान संश्रय' ने शंघाई की 90 प्रतिशत फैक्टरियों की सत्ता पर कब्जा कर लिया और उनमें से 60 प्रतिशत में क्रान्तिकारी कमेटी स्थापित हो गई। देश के दूसरे हिस्सों में भी लगभग यही स्थिति थी।

(अगले अंक में जारी)

—————— नारी सभा ——————

बलात्कारी पुलिस और राज्यसत्ता का खूंखार पुरुष स्वामित्ववादी चेहरा

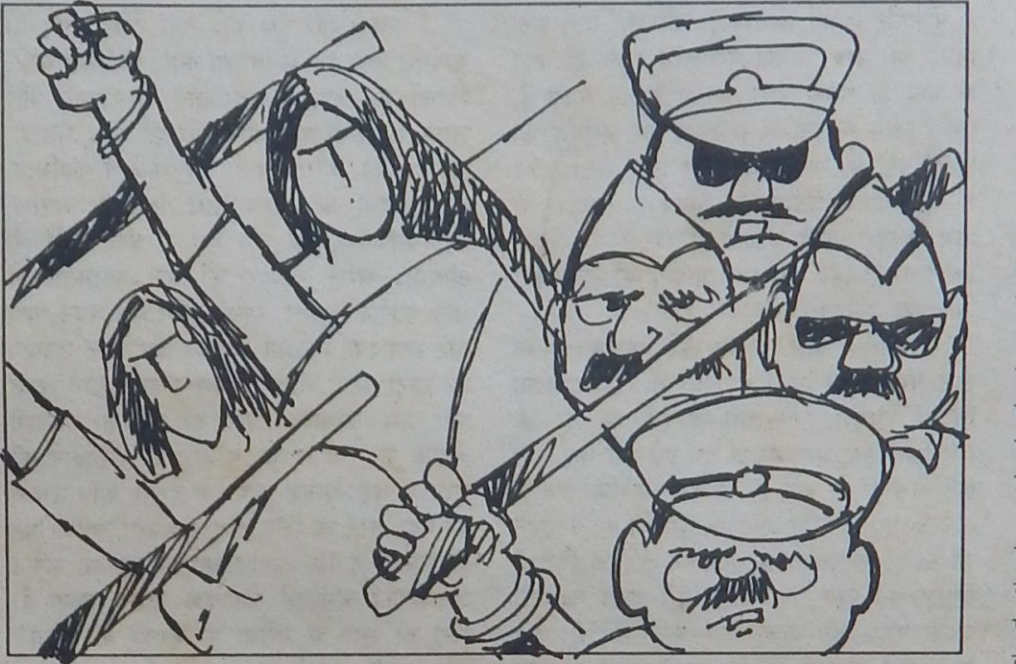

पिछले दिनों महाराष्ट्र के गोंदिया जिले में दो आदिवासी महिलाओं पर हुए बर्बर अत्याचार की खबर अखबारों की सुर्खियां बनी। जब ये महिलाएं गुण्डों से बचकर पुलिस चौकी में शरण मांगने पहुंची तब इन्हें क्या पता था कि खाकी वर्दी के पीछे इन्सान नहीं बल्कि भूखे भेड़िये छुपे हैं जो उन्हें देखकर उन पर टूट पड़ेंगे। लेकिन हुआ ऐसा ही। भूखे भेड़ियों ने उन्हें तो अपना शिकार बनाया ही जब गांव वाले उनकी चीख-पुकार सुनकर वहां पहुंचे तो उन पर भी अन्धाधुंध गोलियां चला दीं जिसमें पांच लोग तत्काल मारे गए और बारह अन्य बुरी तरह से घायल हो गये।

गौरतलब है कि यह चौकी तथाकथित नक्सली कार्रवाइयों पर अंकुश लगाने के लिए बनायी गयी थी। नक्सलवाद विरोध के नाम पर सरकार ने जो असीमित अधिकार पुलिस को दे रखे हैं उनका इस्तेमाल वह किस तरह से आम लोगों के दमन-उत्पीड़न में करती है, इस घटना से यह साफ़ हो जाता है।

यह घटना एकमात्र घटना नहीं है बल्कि इस तरह की तमाम घटनाएं देश के कोने-कोने में घटती रहती हैं। इनमें से कुछ ही घटनाएं अखबारों की सुर्खियां बनती हैं। कुछ मामलों में कोई क़ानूनी कार्रवाई नहीं होती और कुछ में अगर मुकदमा दर्ज भी होता है तो न्यायिक प्रक्रिया में इतना वक्त लगता है कि फिर उस न्याय का कोई अर्थ नहीं रह जाता। ज़्यादातर मामलों में अगर कोई फैसला होता भी है तो वह उत्पीड़ित महिला के पक्ष में नहीं होता। मामला अगर पुलिस से जुड़ा होता है तो अभियुक्तों को या तो लाइन हाजिर कर दिया जाता है या फिर निलम्बित कर दिया जाता है। लेकिन कुछ समय बाद वह बहाल हो जाते हैं और फिर किसी थाने या चौकी में उन्हें तैनात कर दिया जाता है। उनके सम्मान को कोई ठेस नहीं पहुंचती। लेकिन वह महिला जिसके साथ यह बर्बर अत्याचार होता है ज़िन्दगी भर इस त्रासदी को झेलती रहती है और उसका सम्मान उसे वापस नहीं मिलता।

यहां पर सवाल यह उठता है कि ये पुलिसकर्मी इतने वहशी क्यों हो जाते हैं? इनके घरों में भी बहनें, बेटियां, मां और पत्नी हैं। फिर ये दूसरी औरतों को देखकर इतने अमानवीय क्यों हो जाते हैं? आखिर ये आम कांस्टेबिल हैं तो ग़रीबों के बेटे ही, जो पेट की आग से मजबूर होकर पुलिस और सेना में भर्ती होते हैं।

दरअसल इस पूंजीवादी व्यवस्था में जेल, फांसी, कोड़े के साथ ही सेना और पुलिस पूंजीवादी राज्यसत्ता को कायम रखने के उपकरण मात्र हैं। इसलिए यह सरकार ग़रीबों के बेटों को सेना और पुलिस में भर्ती करके पूंजीपतियों की सेवा में लगाती है। कवायद करवा-करवाकर इन्हें सत्ता का निर्जीव कलपुर्जा बनाती है और फिर ये यन्त्रमानव के समान सिर्फ आदेशों का पालन करते हैं। क्योंकि अगर इन्हें ऐसा न बनाया जाय तो यह राज्यसत्ता चले ही नहीं।

हावर्ड फास्ट के 'आदि विद्रोही' उपन्यास की ये पंक्तियां इस बात को और स्पष्ट करती हैं जिसमें राजनीतिज्ञ ग्रैकस, सिसेरो को यह बताता है कि शासक वर्गों की सेना किस उद्देश्य से खड़ी की जाती है – "रोम के पास ढाई लाख सैनिक हैं। इन सैनिकों को विदेशों में जाने के लिए तैयार रहना चाहिए। इसके लिए तैयार रहना चाहिए कि मार्च करते-करते उनके पैर घिस जायें कि वे गन्दगी में और गलाजत में रहें कि वे खून में लोट लगायें ताकि हम सुरक्षित रहें और आराम से ज़िन्दगी बितायें और अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति को बढ़ाएं।"

भारतीय पुलिस को भी इसी परिप्रेक्ष्य में देखने से साफ़ हो जायेगा कि इस प्रकार की नारकीय जीवन स्थितियों में रहते हुए क्यों पुलिस के आम सिपाही के भीतर एक मानवद्वेषी भावना पैदा होती है जिसकी अभिव्यक्ति कमजोर लोगों को उत्पीड़ित करने में होती है और महिलाएं भी समाज के कमजोर वर्गों में भी सबसे कमजोर हैं।

यह सही है कि जब कभी शोषित-उत्पीड़ित जनता की लड़ाई में ये अपने मां-बाप, भाई या बहन को देखते हैं तो इनमें से एक हिस्से का ज़मीर जागता है और वह विद्रोह करके जनता के साथ मिल जाता है।

लेकिन आज के दौर में तो पुलिस बुर्जुआ राज्यसत्ता का अंग ही है जिसके कई खूंखार चेहरे हैं। उसमें से एक चेहरा पुरुष-स्वामित्व का भी है। भारत जैसे देशों में, जहां बुर्जुआ राज्यसत्ता जनतन्त्र का दिखावा भी कम ही करती है, पुलिसिया तन्त्र पाले हुए कुत्तों का तन्त्र है। स्त्री उसके लिए मात्र एक मांस का लोथ है, जिसे जब चाहे, जहां चाहे नोंचा-खसोटा जा सकता है। जस्टिस मुल्ला ने भी एक बार कहा था –"भारतीय पुलिस अपराधियों का संगठित गिरोह है।"

आज पुलिस का अर्थ है लाठी, पुलिस का अर्थ है गोली, पुलिस का अर्थ है बर्बर अत्याचार। इसलिए महिलाओं को इस तरह के अत्याचारों के खिलाफ संगठित होकर खुद ही अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़नी होगी। नारीवादियों को भी कुछ एक अनुष्ठानों, आयोजनों से आगे बढ़कर स्त्रियों की जमीनी स्तर की लड़ाइयों में शिरकत करनी होगी तभी सही अर्थों में नारी मुक्ति की दिशा में कदम बढ़ाया जा सकता है।

– हंसी जोशी

लुधियाना पुलिस-प्रशासन की नज़र में सभी किरायेदार अपराधी हैं

बिगुल प्रतिनिधि

लुधियाना में इन दिनों एक अभियान पुलिस-प्रशासन द्वारा चलाया जा रहा है, जिसके तहत मकान-मालिकों तथा फैक्टरी मालिकों पर दवाव डाला जा रहा है कि वे अपने यहां रहने वाले तथा काम करने वाले लोगों के फोटो सहित पते जल्दी से जल्दी से थानों में जमा करायें। पुलिस-प्रशासन के इस अभियान के निशाने पर इस बार हैं – प्रवासी मज़दूर। अपराधों पर काबू पाने के नाम पर प्रवासी मज़दूरों के उत्पीड़न की यह नई साजिश है।

दरअसल लुधियाना आजकल पंजाब में अपराधों की राजधानी बना हुआ है। लुधियाना के क्षेत्रीय अखबारों में हर रोज 'लुधियाना अपराधनामा' अलग से एक कालम छप रहा है। एक अनुमान के मुताबिक इस शहर में हर पांचवे दिन एक कत्ल होता है। पिछले कुछ महीनों में कई बच्चों को अगवा कर फिरौती मांगने, फिरौती न मिलने पर बच्चों को जान से मार डालने की कई घटनाएं हुई हैं। कानून व्यवस्था की यह स्थिति है कि अपराधी खुलेआम सड़कों पर घूमते हैं।

अपराधों पर नियंत्रण करने, कानून व्यवस्था सुधारने के लिये लुधियाना का पुलिस-प्रशासन भी वही हथकण्डे अपना रहा है, जो "कानून के रक्षक" देश के अन्य हिस्सों में अपनाते हैं। यानी निरपराध ग़रीब जनता के बीच अपराधियों की धरपकड़ का अभियान चलाना। पुलिस, जैसे ही अपराध बढ़ते हैं, कुछ बेकसूर लोगों को पकड़कर अपना रिकार्ड सुधारने के काम में जुट जाती है। बड़े-बड़े अपराधियों की पुलिस से सांठगांठ और मिलीभगत किसी से छुपा हुआ नहीं है। इन बड़े अपराधियों को बचाने के लिये पुलिस ग़रीब जनता को ही बलि का बकरा बनाती है।

इस बार लुधियाना में पुलिस ने किरायेदारों तथा फैक्टरी मज़दूरों के फोटो सहित पतों को थाने के रिकार्ड में रखने का जो फैसला किया है, उससे वह एक तीर से दो निशाने साध रही है। एक तो वह पुलिस सक्रियता के नाम पर आम ग़रीब जनता का उत्पीड़न कर रही है, दूसरा, जो ज्यादा खतरनाक है, वह पंजाबी तथा प्रवासी मेहनतकशों में फूट डाल रही है। क्योंकि किरायेदारों तथा फैक्टरी मज़दूरों में एक बड़ी संख्या यू.पी., बिहार से आये प्रवासी मज़दूरों की है। यह देखने में आ रहा है कि यदि किसी अपराध में कोई पंजाबी पकड़ा जाता है तो वह एक सामान्य खबर बनती है, जबकि यदि कोई बिहार, यू.पी. की पृष्ठभूमि का व्यक्ति पकड़ा जाता है तो उस खबर को उछाला जाता है और उस पर शोर मचाया जाता है।

यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि पंजाब की धरती पर अपना खून-पसीना एक करने वाले प्रवासी मज़दूरों की लम्बे समय से यह मांग रही है कि उनके राशन कार्ड बनाये जायें तथा उन्हें मतदाता पहचान-पत्र जारी किये जायें। लेकिन यहां के प्रशासन ने इस जायज मांग पर कभी गौर नहीं किया। प्रशासन को इन मेहनतकशों को नागरिक अधिकार प्रदान करना मंजूर नहीं है। वह तो इनके नाम अपनी फाइलों में नागरिक के तौर पर नहीं, बल्कि संभावित अपराधी के रूप में दर्ज करने पर आमादा है।

पंजाब के लुधियाना जैसे शहरों में बिहार, यू.पी., मध्यप्रदेश, राजस्थान तथा जम्मू-कश्मीर तक से लोग रोजी-रोटी की तलाश में भटकते हुए आते हैं। इनमें एक अच्छी खासी तादाद उन लोगों की होती है जो सिर्फ सीजन में काम करने आते हैं और सीजन खत्म होने पर वापस लौट जाते हैं। अब पुलिस की कार्यप्रणाली को देखें तो जब भी कोई अपराध घटित होगा तो पुलिस के निशाने पर ये सीजन खत्म होने पर अपने घरों को चले गये मज़दूर प्रमुखता से होंगे। जाहिर है पुलिस प्रशासन की यह नीति बहुत खतरनाक है, जिसका डटकर विरोध करना होगा। इस विरोध में प्रवासी मज़दूरों के साथ पंजाब के मेहनतकशों तथा छोटे मकान-मालिकों को साथ आना होगा।

दैत्य का पेट कभी नहीं भरता

अमेरिका की एनरॉन कम्पनी महाराष्ट्र और भारत सरकार के गले की फांस बन गयी है। डाभोल पावर प्रोजेक्ट का सौदा, जिसमें महाराष्ट्र सरकार ने एनरॉन कम्पनी से बिजली खरीदने का करार किया था और भारत सरकार ने उसे काउण्टर गारंटी दी थी, अब महाराष्ट्र की जनता पर ही नहीं बल्कि वह महाराष्ट्र सरकार के लिए भी महंगा साबित हो रहा है। एनरॉन के बिजली बिलों के बोझ से महाराष्ट्र सरकार अभी चिंचिया ही रही थी कि उसने बिना किसी मुरव्वत के एक और मांग कर दी है। अब एनरॉन के मैनेजरों ने महाराष्ट्र सरकार से बिजली पैदा करने के लिए उपयोग में आने वाली नेफ्था (एक केमिकल) पर बिक्री कर से पूरी छूट मांगी है।

एनरॉन पिछले साल तक नेफ्था का आयात करती थी। लेकिन उसकी सात रुपये प्रति यूनिट से भी अधिक की दर वाले बिजली बिलों की मार से बेहाल सरकार की सिफारिश पर भारत सरकार ने एनरॉन को यह आदेश दिया कि वह इंडियन ऑयल कारपोरेशन से नेफ्था खरीदकर बिजली सस्ती करे। आयातित नेफ्था की तुलना में आई.ओ.सी. का नेफ्था हालांकि सस्ता है लेकिन उस पर 21.8 प्रतिशत सीमा शुल्क लगता है। इसके अलावा महाराष्ट्र सरकार ने 5.4 प्रतिशत बिक्री कर भी लगा रखा है। इसी बिक्री कर से छूट की मांग एनरॉन ने महाराष्ट्र सरकार से की है।

'नंगा नहायेगा क्या और निचोड़ेगा क्या' की हालत में पहुंच चुकी महाराष्ट्र सरकार ने एनरॉन की मांग फिलहाल ठुकरा दी है क्योंकि वह नेफ्था पर बिक्री कर से हर साल 70 करोड़ रुपये वसूलती है। एक ही सूरत में सरकार एनरॉन की इस मांग पर राजी हो सकती है जब वह राजस्व के इस घाटे की भरपाई जनता से वसूलकर करे। लेकिन जनता पर इस नये बोझ को डालना सरकार के लिए मारक हो सकता है इसलिए वह जनता के बजाय एनरॉन की नाराजगी मोल लेने को तैयार है।

एनरॉन के समूचे मामले ने यह साफ दिखा दिया है कि नेताओं-अफसरों-सरकारों को चारे फेंककर पटा लेने के बाद किस तरह बहुराष्ट्रीय कम्पनियां दैत्य की तरह अपना पेट फुलाती जाती हैं। उनकी मुनाफे की हवस कभी शान्त नहीं होती। मेहनतकश जनता को यह बात अब अच्छी तरह समझ में आ गयी है कि जब तक इनका नामोनिशान नहीं मिटेगा तब तक इनकी भूख कभी शान्त नहीं हो सकती।

(पृष्ठ 1 से आगे)

आयात-निर्यात नीति...

हैं जिनमें सस्ते श्रम के बूते वह मुनाफा पीटने की होड़ में खड़ा हो सकता है। उसे यह भी भरोसा है कि विश्व व्यापार संगठन के ढांचे में रहते हुए तीसरी दुनिया के अपने बिरादरों की लॉबीबन्दी के जरिये वह साम्राज्यवादी बड़े बिरादरों के साथ तगड़ी सौदेबाजी कर अपने मुनाफे को बचाता रहेगा।

साम्राज्यवादी पूंजी के साँथ इसी सौदेबाजी के दरवाजे खुले रखने के लिए मुरासोली मारन ने उन विदेशी मालों के आयात पर निगरानी रखने के लिए एक कमेटी बनाने की भी घोषणा की है जिससे देश के बड़े पूंजीपति खासतौर पर मुनाफा बटोरते हैं। सौदेबाजी की इसी मंशा को जाहिर करते हुए मारन ने यह भी घोषणा की है कि ज़रूरत पड़ने पर आयात शुल्क बढ़ाकर और फिर से ज़रूरी बन्दिशें लगाकर देशी पूंजीपतियों के मुनाफे को बचाने की कोशिश की जायेगी। इसके लिए वह विश्व व्यापार संगठन के प्रावध ानों के तहत 'एंटी डंपिंग' उपायों (विदेशी मालों की भरमार हो जाने के बाद उसे रोकने के लिए लागू होने वाला उपाय) का सहारा लेने का आश्वासन पूंजीपतियों को दे रहे हैं।

इतना तो तय है कि आयात खुल जाने के बाद बड़े उद्योग अपने मुनाफे को बचाने का कोई न कोई तरीका ढूंढ ही लेंगे। वे तबाह नहीं होने जा रहे। उद्योग के किसी सेक्टर में अगर वे पिट भी जायेंगे तो उसमें से पूंजी निकालकर और मज़दूरों को सड़कों पर फेंककर वे किसी नये सेक्टर में पूंजी लगा लेंगे या किसी विदेशी कम्पनी से गांठ जोड़कर लूटेंगे। लेकिन लाखों छोटे-उद्योग और हथकरघा, दस्तकारी आदि परम्परागत पेशे तबाह हो जायेंगे और इनसे जुड़े करोड़ों मज़दूर भी सड़कों पर फेंक दिये जायेंगे।

दरअसल, विदेशी मालों से होड़ की तैयारी पिछले दस सालों से चल रही है, जब नरसिंहराव सरकार और उसके बाद आने वाली हर सरकार ने पूंजीपतियों को तरह-तरह की छूटें देना शुरू किया था। अब आयात पूरी तरह खुला हो जाने के बाद जो सबसे बड़ा तोहफा मिलने वाला है, वह है श्रम क़ानूनों में बदलाव कर मज़दूरों को पूंजीपतियों के रहमो-करम पर छोड़ देना। बजट में एक कदम उठाया जा चुका है (1000 से कम मज़दूरों वाले उद्योगों में छंटनी की खुली छूट देकर)। अब बस श्रम आयोग की सिफारिशें आने का इन्तजार है।

पिछले साल निर्यात को बढ़ावा देने के नाम पर विशेष आर्थिक क्षेत्रों में 100 प्रतिशत विदेशी निवेश और श्रम क़ानूनों से छूट के सिलसिले को आगे बढ़ाते हुए इस बार कई और छूटें दी गयी हैं। अब इन विशेष आर्थिक क्षेत्रों में लघु उद्योगों के लिए आरक्षित वस्तुओं का उत्पाद्न भी किया जा सकता है और हर तरह के विदेशी निवेश को अब फटाफट मंजूरी मिल जायेगी। इसके साथ ही कर्जों एवं करों में भी नयी रियायतें दे दी गयी हैं। इस बार उद्योगों की तरह ही कृषि क्षेत्र के निर्यात को बढ़ाने के नाम पर हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र और जम्मू-कश्मीर में तीन कृषि निर्यात क्षेत्र खोलने का फैसला लिया गया है, जिनमें वे सारी रियायतें होंगी जो औद्योगिक निर्यात क्षेत्रों को दी गयी हैं। शुरुआत सेब और अल्फांसो आम के निर्यात से करने का इरादा है। इन क्षेत्रों में उत्पादन से लेकर पैकिंग तक के कामों में लगने वाले मज़दूरों की रक्त-मज्जा तक निचोड़ा जायेगा तभी वे विदेशी बाज़ारों में टिक पायेंगे।

एक अप्रैल से यह नयी नीति लागू हो जायेगी। अब देश में विदेशी कार, मोटरसाइकिलें, शीतल पेय, डिब्बा बन्द खाने के सामान और शराब-बियर ही नहीं बल्कि विदेशी मांस-मछली, चाय-कॉफी, कपड़े-लत्ते, जूते-मोजे व प्लास्टिक के सामानों के साथ-साथ विदेशी अनाज, फल-सब्जिया, दूध और दूध से बनी चीज़ें भी आयेंगी। घरेलू बाज़ार की इस मारामारी में छोटे-मंझोले किसान, सब्जी-फल पैदा करने वाले छोटे उत्पादक, मछुआरे, बुनकर और घरेलू उपयोग की छोटी-मोटी चीज़ें बनाकर गुजारा करने वालों की भारी आबादी तबाह हो जायेगी। विदेशी अनाज के साथ बाज़ार में होड़ में न टिकने की सूरत में बड़े अनाज उत्पादक दूसरी कृषि उपजों को पैदा करने के लिए होड़ मचाएंगे। नतीजा यह हो सकता है कि अनाज के इफ़रात का संकट अनाज की कमी के संकट में बदल सकता है। दोनों ही सूरत में ग़रीबों के चूल्हों की उदासी और बढ़ती जायेगी।

लेकिन, देश की ग़रीब मेहनतकश जनता की छाती पर पहाड़ बनकर सवार ऊपरी दस-पन्द्रह फीसदी धनिक तबका खुले आयात से इतना मगन है कि वह इसे आबादी की एक नयी सुबह के रूप में देख रहा है। वह इतना गदगद है कि 31 मार्च-1 अप्रैल 2001 की आधी रात की तुलना वह 14-15 अगस्त 1947 की आधी रात से कर रहा है। पाशविक इन्द्रियभोग के चरम-सुख को जीवन का परम लक्ष्य मानने वाली इस संवेदनहीन-खुदगर्ज जमात को भला इससे क्या वास्ता कि इस नयी आज़ादी ने विनाश की कितनी गहरी खाई में धंसा दिया है।

(पृष्ठ एक से आगे)

तहलका डॉट कॉम भंडाफोड़

होनी ही चाहिए। इस पूंजीवादी व्यवस्था में जिसे भ्रष्टाचार और ग़ैर क़ानूनी लूट कहा जाता है वह क़ानूनी लूट की कोख से पैदा हुए जारज सन्तान ही तो हैं। पैदाइशी भ्रष्ट व्यवस्था की औलादोंसे किसी किस्म की हया, नैतिकता और सदाचार की उम्मीद उसी तरह नहीं की जा सकती, जिस तरह किसी राक्षस का कोई वंशज इन्सान नहीं हो सकता। इसलिए, अगर देश से हर तरह के भ्रष्टाचार-अनाचार-दुराचार को मिटाना है तो इस राक्षसी पूंजीवादी व्यवस्था को ही मिटाना होगा। मेहनतकक़्शों को शासक पूंजीपतियों के गिरोहों और उनके राजनीतिक रहनुमाओं की नंगई को चुपचाप बर्दाश्त करने के बजाय इनके खिलाफ एक जुझारू लड़ाई की तैयारियों को तेज कर देना होगा।

(पृष्ठ 5 से आगे)

अन्त्योदय अन्न योजना...

कुन्तल 900 रुपये आती है

जाहिर है कि अनाज फाजिल इसलिए नहीं है कि लोगों की ज़रूरत से ज़्यादा पैदा हो गया है। अनाज बाज़ार की ज़रूरत से फाजिल हो गया है। इफ़रात का यही संकट पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली का बुनियादी संकट है। औद्योगिक उत्पादन जब इफरात हो जाता है तो यह छंटनी-तालाबन्दी और मज़दूर वर्ग की कंगाली को जन्म देता है और यही चीज़ भूख और अनाज की अधिकता के संकट को भी जन्म देती है। यह संकट पैदा ही इसलिए होता है कि अपने मुनाफे की हवस में पूंजीपति मेहनतकश जनता को इस कदर निचोड़कर कंगाल बना देते हैं कि वह बाज़ार से मालों को खरीदने लायक ही नहीं रहता।

एक और तथ्य अनाज की अधिकता के इस संकट के बुनियादी कारण को साफ करता है। पिछले दस वर्षों में अनाज के उत्पादन की दर जनसंख्या बढ़ोत्तरी की दर से कम ही रही है। अनाज की वृद्धि दर 1.6 प्रतिशत की तुलना में जनसंख्या वृद्धि की दर 1.9 प्रतिशत रही है। साफ जाहिर है कि अनाज की खपत लगातार कम होती गयी है जिससे अधिकता का यह संकट पैदा हुआ है।

बाज़ार और मुनाफे के इस खेल में भूख, गरीबी, बेकारी और अकाल के प्रति किसी किस्म की मानवीय संवेदना या सदाशयता की कोई गुंजाइश नहीं है। हां, मानवीय संवेदना का नाटक ज़रूर किया जा सकता है जैसा नाटक प्रधानमंत्री महोदय ने अपने पिछले जन्मदिन पर सरकारी ग़रीबी रेखा के नीचे रहने वाले पांच करोड़ लोगों के लिए अंत्योदय अन्न योजना की घोषणा करके किया है। सरकार के वित्त मंत्रालय, खाद्य मंत्रालय और अन्य सभी संबंधित मंत्रालयों ने पूरा हिसाब लगाकर इस योजना को हरी झंडी दिखाई है। इस योजना के तहत भी अनाज मुफ्त में नहीं बल्कि गेहूं दो रुपये किलो और चावल तीन रुपये किलो बांटने की घोषणा की गयी है। इस योजना से सरकार ने दो तरह से लाभ कमाने की सोची है। एक तो गोदामों में सड़ रहे अनाज से भी कुछ कीमत निकल आयेगी व गोदाम खाली हो जायेगा और दूसरे सरकार ग़रीबपरवर होने का नाटक भी कर लेगी। मुनाफाखोरों की चहेती सरकार से इससे अधिक उम्मीद भी क्या की जा सकती है?

(पृष्ठ 1 से आगे)

पंतनगर मजदूर हत्याकांड

चुका था। प्रशासन द्वारा डराने-धमकाने, फर्जी मुकदमों में फंसाने और निलम्बन-निष्कासन की कार्रवाइयां चलती रहीं।

13 अप्रैल '98 को धारा 144 और हड़ताल तोड़ने के लिए लागू आवश्यक सेवा अध्यादेश को तोड़ते हुए 6000 से ज़्यादा मज़दूरों-कर्मचारियों को जुलूस निकल पड़ा। ये प्रदर्शनकारी शान्तिपूर्वक गिरफ्तारी के लिए भी तैयार थे। जुलूस अभी चितरंजन भवन छात्रावास और झा कालोनी के पास चौराहे पर पहुंचा ही था कि खाकी वर्दीध ारियों का ताण्डव शुरू हो गया।

उस समय के अखबारों में छपी खबरों और प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार बिना किसी चेतावनी के पी.ए.सी ने छात्रावास की ओर आंसू गैस के गोले फेंके। भीड़ में भगदड़ मच गयी। फिर निहत्थे और भागते लोगों पर अंधाधुंध गोलियां चलने लगीं। लगभग 30 मिनट तक गोलियां दगती रहीं। भागते हुए लोगों पर निशाना बांध-बांधकर गोलियां दागी गयीं। घरों में छुपे-छिपाये लोगों को, खींच-घसीटकर, बाहर ले जाकर कुन्दों, संगीनों तथा ईटों तक से मारा गया। घायलों को बचाने, पानी पिलाने या सहारा देने वालों पर भी गोलियां चलीं। मेनहोल में छुपे पांच मज़दूरों को संगीनों से गोद-गोदकर मार डाला गया।

उधर छात्रावासों में अब तक तमाशबीन बने डरे-सहमे छात्रों के गरम खून ने उबाल मारा और वे दौड़ पड़े निहत्थों को बचाने, अध मरों-घायलों का उपचार करवाने। पी.ए.सी. ने इन्हें भी डराने-भगाने की कोशिश की। लेकिन जब चारों तरफ से छात्रों का हुजूम इकट्ठा होने लगा तब जाकर पुलिसिया ताण्डव पर रोक लगी। उस वक्त के अखबार बताते हैं कि पी.ए.सी. ने ट्रकों में घायलों और मृतकों को लादा अस्पताल पहुंचाने के लिए, लेकिन वे कभी अस्पताल नहीं पहुंचे। बाद तक उनका कुछ पता नहीं चला। विश्वविद्यालय के, 'के' फार्म के गन्ने के खेत में न जाने कितनी लाशों (जिन्दा या मुर्दा!) को फेंककर आग लगा दी गयी। सब कुछ जलकर राख में बदल गया। दो ट्रैक्टरों से जली फसलों में हेर-फेर करके सबूत को नष्ट करने का घृणित कार्य हुआ, जहां से अधजली हड्डियों के अवशेष बाद तक मिलते रहे।

पी.ए.सी. ने न सिर्फ जुलूस पर गोलियां चलाईं, बल्कि घरों में घुसकर हत्याएं की गयीं, जंगल की ओर भागे मज़दूरों को भी नहीं बख्शा गया। लाशें कहां दफनाई, जलाई या बहायी गयीं, आज तक पता नहीं चल सका। 6 लाशें तो लगभग चालीस किमी. दूर सितारगंज से बरामद हुई थीं।

इस हत्याकाण्ड में हालांकि प्रशासनिक और सरकारी तंत्र महज 13 की मौत और 26 घायलों की स्वीकृति देता है, लेकिन तत्कालीन अखबारों, कर्मचारी संगठन व आम प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार 150 से ज़्यादा मज़दूर मारे गये, 100 से ज़्यादा घायल हुए और 300 से ज़्यादा लोग लापता हो गये। कितने ऐसे मज़दूर जिनका विश्वविद्यालय रजिस्टर में नाम दर्ज किये बगैर मामूली दिहाड़ी पर खटाया जाता था, जिन्दा बोरों में बंधे हुऐ पाये गये। किस्मत के धनी वे मज़दूर थे जिन्हें छात्रों की एकत्रित भीड़ के कारण पी.ए.सी. के जवान जल्दी-जल्दी में 'लापता' नहीं कर पाये।

इस विनाशलीला को रोकने में छात्रों की महत्वपूर्ण भूमिका बनी थी। उन्होंने न केवल घायलों की मदद की, चिकित्सा-इलाज की 'व्यवस्था करवाई, वरन पी.ए.सी. तक पर, एक हद तक अंकुश लगाया। छात्रों के गुस्से से भयभीत कुलपति डा. धर्मपाल सिंह परिसर छोड़कर भाग गया। लोग बताते हैं कि छात्रों ने सात दिनों तक प्रशासन अपने हाथ में ले रखी थी।

घटना के बाद लाशों के सौदागर सारे चुनावी सियार आरोपों-प्रत्यारोपों में उलझ गये। सरकार ने मृतकों के लिये 5000 रुपये और घायलों के लिए 2500 रुपये राहत का खैरात बांट दिया। नये कुलपति की नियुक्ति हो गयी, सैकड़ों की कुर्बानी के बदले 19 को नौकरियां मिल गयीं और अन्ततः समझौता हो गया। लेकिन पन्तनगर के चेहरे पर लगा यह बदनुमा दाग आज भी मौजूद है। आज भी, कुर्बानी का प्रतीक बन चुके शहीद चौक पर, 13 अप्रैल को अतीत के उस बहादुराना संघर्ष को याद करने के लिये शहीदी दिवस मनाने की परम्परा जीवित है। कुछ के लिए तो महज यह एक औपचारिक कार्यक्रम हो सकता है, लेकिन 23 साल बाद आज भी तमाम मज़दूरों के दिलों में 1978 के काले दिन की वह घटना ताजा है। अब भी इनमें से कई अपने ऊपर हुए एक-एक जुल्म का जवाब देने के लिये कृतसंकल्प हैं। वे इसे अपनी मुक्तिकामी संघर्ष के प्रेरणा दिवस के रूप में मनाते हैं।

चाहें पंतनगर हो अथवा बेलछी, बेलाडीला, स्वदेशी कॉटन मिल कानपुर, डाला-चुर्क, मैहर, मुल्ताई, मुजफ्फरपुर, बबराला और पडरौना – बर्बर हत्याकाण्डों की पूरी एक श्रृंखला बन चुकी है। आज़ाद भारत के पिछले 53 वर्षों में देशी हुकूमत की गोलियों ने उससे अधिक लोगों के खून से धरती को रंगा है, जितने लोगों को दो सौ वर्षों के शासन के दौरान अंग्रेजों ने मौत के घाट उतारा था। सेना और पुलिस के फासिस्ट दमन के अन्तर्गत दशकों से जी रहे पूर्वोत्तर भारत और कश्मीर के लोग, खालिस्तानी आतंकवाद और सरकारी आतंकवाद की दो पाटों के बीच पिसने वाले पंजाब के लोग और लगातार संगीनों के साये तले जीने वाली तेलंगाना, दण्डकारण्य सहित देश के विभिन्न हिस्सों की जनता हो अथवा कल-कारखानों के मज़दूर या आम किसान, जिनके हक़ की आवाज़ को लाठियों-गोलियों से खामोश कर दिया जाता है – हर जगह बर्बरता की एक ही कहानी है।

देशी सरमायेदारों और विदेशी लुटेरों के भाड़े के टट्टू मेहनतकश अवाम को ज्यादा से ज्यादा निचोड़ने की नीतियों को लागू करने के साथ ही इस बात का भी पुख्ता इंतजाम कर रहे हैं कि विरोध में उठने वाली हर आवाज़ का गला घोंट दिया जाये। भांति-भांति के काले क़ानूनों, फर्जी मुठभेड़ों और हिरासत में मौतों के साथ ही, ज़रूरत पड़ने पर कई-कई जलियांवाला बाग काण्ड रच देने के लिए सत्ताधारी कृतसंकल्प हैं। मिर्जापुर जिले का भवानीपुर हत्याकाण्ड इसका ताज़ा उदाहरण है।

आज के हालात मेहनतकशों को एक बार फिर आगाह कर रहे हैं कि उन्हें न जलियांवाला बाग को भूलना होगा, न ही पंतनगर को और न ही भवानीपुर को। उन्हें पूंजीवादी जनतंत्र के रामनामी दुपट्टे के नीचे छुपे खंजरों की शिनाख्त करनी होगी। उन्हें शहीदों के लहू की कीमत नये संघर्षों और कुर्बानियों से आंकनी होगी।

पंतनगर के मज़दूरों के सामने ही नहीं, पूरे तराई के मज़दूरों के सामने आज का जीवित प्रश्न यह है कि क्या वे 13 अप्रैल, 1978 को भूल चुके हैं? उन्हें सोचना ही होगा मेहनतकश शहीदों का लहू रंग लाये, इसके लिए उन्हें कुछ करना होगा। संघर्षों का परचम फिर से ऊंचा उठाना होगा।

(पृष्ठ 4 से आगे)

पार्टी की बुनियादी समझदारी

के बिना कोई मजबूत समाजवादी पार्टी नहीं हो सकती" *(लेनिन: 'हमारा कार्यक्रम', सम्पूर्ण रचनाएं, खण्ड-4, अंग्रेजी संस्करण, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मास्को, 1964, पृ. 210* और **"क्रान्तिकारी सिद्धान्त के बिना कोई क्रान्तिकारी आन्दोलन नहीं हो सकता"** *(लेनिन: 'क्या करें', अंग्रेजी संस्करण, फॉरेन लैंग्वेजेज प्रेस, पीकिङ., 1973, पृ. 28)*। संक्षेप में, पिछले पचास वर्षों के दौरान, क्रान्ति और निर्माण के कामों में हमारी पाटी द्वारा हासिल की गई सभी जीतें और सभी सफलताएं मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुङ विचारधारा की महान जीतें हैं। – शेष अगले अंक में जारी

जन्मदिन (22 अप्रैल) के अवसर पर

लेनिन के साथ दस महीने

– एल्बर्ट रीस विलियम्स

एल्बर्ट रीस विलियम्स उन पांच अमेरिकी जनों में से एक थे जो अक्टूबर क्रान्ति के तूफानी दिनों के साक्षी थे। वे 1917 के बसंत में रूस पहुंचे। उस समय से लेकर अक्टूबर क्रान्ति तक, वे तूफान के साक्षी ही नहीं बल्कि भागीदार भी रहे। इस दौरान उन्होंने व्यापक जनता के शौर्य एवं सृजनशीलता के साथ ही बोल्शेविक योद्धाओं के जीवन को भी निकट से देखा। लम्बे समय तक वे लेनिन के साथ-साथ रहे। क्रान्ति के बाद जुलाई, 1918 तक उन्होंने दुनिया भर की प्रतिक्रियावादी ताकतों से जूझती पहली सर्वहारा सत्ता के जीवन-संघर्ष को निकट से देखा।

स्वदेश लौटकर रीस विलियम्स ने दो किताबें लिखीं – **'लेनिनः व्यक्ति और उनके कार्य'** तथा **'रूसी क्रान्ति के दौरान'**। ये दोनों पुस्तकें एक जिल्द में **'अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन'** नाम से राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ से प्रकाशित हो चुकी हैं।

लेनिन के जन्मदिवस के अवसर पर हम रीस विलियम्स की पूर्वोक्त पहली पुस्तक का एक हिस्सा 'बिगुल' के पाठकों के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं।

– संपादक

1. लेनिन के युवा अनुयायी

मैंने सर्वप्रथम जीते-जागते लेनिन का नहीं, बल्कि पांच युवा रूसी मज़दूरों के विचारों और भावनाओं में उनके दर्शन किये। वे 1917 की गर्मी में बड़ी संख्या में पेत्रोग्राद लौटनेवाले निर्वासितों में से थे।

उनकी चुस्ती-फुर्ती, समझ-बूझ और अंग्रेजी भाषा के उनके ज्ञान के कारण अमरीकी उनकी ओर आकृष्ट हुए। उन्होंने शीघ्र ही हमें सूचित किया कि वे बोल्शेविक हैं। एक अमरीकी ने कहा, "निश्चय ही वे ऐसे दिखाई तो नहीं पड़ते।" कुछ समय तक तो उसे इसका विश्वास ही नहीं हुआ। उसने अखबार में लम्बी दाढ़ीवालों, अविज्ञ, निठल्लों व शोहदों के रूप में बोल्शेविकों का चित्र देखा था। और इन व्यक्तियों की दाढ़ी-मूंछ सफाचट थी, वे विनम्र, विनोदप्रिय, मिलनसार और जागरूक थे। वे दायित्व से कन्नी नहीं काटते थे, मौत से डरते नहीं थे और सबसे अद्भुत बात यह कि वे काम से भी नहीं घबराते थे। और वे बोल्शेविक थे।

वोस्कोव न्यूयार्क से आया था, जहां वह बढ़ई यूनियन नं. 1008 का संगठक रह चुका था। यानिशेव मिस्तरी और गांव के पादरी का लड़का था। वह संसार के सभी भागों में खानों और कारखानों में काम कर चुका था। नैबुत दस्तकार था। वह सदा अपने साथ पुस्तका का बण्डल लिये रहता था और उनमें से मिलने वाले किसी नवीनतम विचार पर सदा बहुत उत्साह प्रकट करता था। रात-दिन जहाजी दास की भांति काम करने वाले वोलोदार्स्की ने अपनी हत्या के कुछ सप्ताह पूर्व मुझसे कहा था, "ओह! मान लीजिये कि वे मुझे मार ही डालते हैं, तो इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है! पांच व्यक्तियों को जीवन भर काम करने से जितनी प्रसन्नता होती, मैं उससे अधिक खुशी पिछले 6 महीनों में अपने काम से हासिल कर चुका हूं।" पेटेर्स फोरमैन था। उसके सम्बन्ध में बाद में अखबारों में इस आशय की रिपोर्टें प्रकाशित हुई थीं कि वह एक खूनी नृशंस व्यक्ति था और तब तक मृत्युदण्ड-सम्बन्धी आदेश-पत्रों पर हस्ताक्षर करता रहता था, जब तक उसकी उंगलियों में क़लम चलाने की ताकत बाक़ी रहती थी। वह अक्सर अपने विलायती गुलाबों वाले बगीचे और नेक्रासोव की कविताओं के लिए उसांसे भरता रहता था।

इन व्यक्तियों ने बड़े शान्त और अचल भाव से हमें विश्वास दिलाया कि विवेक और चरित्र की दृष्टि से लेनिन न केवल सभी बोल्शेविकों से, बल्कि रूस, यूरोप और समस्त विश्व के शेष सभी लोगों से आगे हैं।

हम लोगों के लिए, जो प्रतिदिन समाचारपत्रों में यह पढ़ा करते थे कि लेनिन जर्मन गुप्तचर हैं, जो हर रोज यह सुना करते थे कि पूंजीशाही ने उन्हें एक आवारा, देशद्रोही और मूर्ख मानते हुए क़ानून-विरुद्ध आचरण करनेवाला व्यक्ति घोषित कर दिया है, यह सचमुच नयी बात थी। इन व्यक्तियों का मन विलक्षण और कट्टर प्रतीत हुआ। परन्तु ये व्यक्ति न तो मूर्ख और न भावुक ही थे। संसार में जगह-जगह काम करते हुए भटकते रहने से उनकी विवेक-शक्ति परिपक्व हो गई थी। वे वीर-पूजक भी नहीं थे। बोल्शेविक आन्दोलन पुरजोश था, पर साथ ही वैज्ञानिक और यथार्थवादी भी और उसमें वीर-पूजा के लिए कोई स्थान नहीं था। फिर भी ये पांचों बोल्शेविक यह घोषणा करते थे कि सच्चरित्रता और प्रज्ञा की दृष्टि से महान रूसी का नाम निकोलाई लेनिन है। वे उस समय एक ग़ैरक़ानूनी व्यक्ति घोषित थे तथा अस्थाई सरकार उन्हें गिरफ्तार करने को प्रयत्नशील थी।

जितना ही अधिक हम इन युवा उत्साही अनुयायियों से मिलते-जुलते, उस व्यक्ति से मिलने की आकांक्षा भी उतनी ही अधिक बढ़ती, जिसे उन्होंने अपना नेता स्वीकार कर लिया था। क्या वे हमें वहां ले जायेंगे, जहां लेनिन छिपे हुए थे?

वे हंसते हुए जवाब देते, "थोड़ी प्रतीक्षा करें, खुद ही उनसे मुलाक़ात हो जायेगी।"

1917 की गर्मी और पतझड़ के दौरान हम आतुरता के साथ प्रतीक्षा करते और केरेन्स्की की सरकार को लगातार कमजोर होते देखते रहे। 25 अक्टूबर (7 नवम्बर) को बोल्शेविकों ने अस्थाई सरकार के अन्त की घोषणा की और उसके साथ ही रूस को सोवियतों का जनतंत्र और लेनिन को प्रधान घोषित कर दिया।

2. लेनिन – पहली नज़र में

जब अपनी क्रान्ति की विजय से प्रफुल्ल एवं हर्षोन्मत्त गाते हुए मज़दूरों और सैनिकों के समूह स्मोल्नी के बड़े हाल में जमा हो रहे थे और क्रूजर 'अव्रोरा' की तोपों की गर्जना पुरानी व्यवस्था की मौत और नूतन सामाजिक व्यवस्था के आविर्भाव की उद्घोषणा कर रही थी, उसी समय लेनिन सौम्य भाव से मंच की ओर बढ़े तथा अध्यक्ष ने सूचित किया, "अब कामरेड लेनिन कांग्रेस के सामने अपने विचार प्रस्तुत करेंगे।"

हम यह देखने को उत्सुक थे कि लेनिन के व्यक्तित्व का जो चित्र हमारे मानस-पट पर बना हुआ था, वे उसके अनुरूप हैं या नहीं। किन्तु हम संवाददाता जहां बैठे थे, वहां से वे शुरू में दिखाई नहीं पड़ रहे थे। नारों, जोरों की करतल तथा हर्षध्वनियों, सीटियों और पदाघातों के शोर में वे सभा-मंच से गुजरे और ज्योंही मंच पर पहुंचे, जो हमसे 30 फुट से अधिक दूरी पर नहीं था, तो लोगों का जोश अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया। अब वे हमें साफ-साफ दिखाई पड़ रहे थें। उन्हें देखकर हमारे दिल बैठ गये।

हमने उनका जो चित्र अपने मस्तिष्क में बना रखा था, वे उसके बिल्कुल प्रतिकूल थे। हमने सोचा था कि वे लम्बे क़द के होंगे और उनका व्यक्तित्व प्रभावशाली होगा, परन्तु वे ठिगने और मजबूत काठी के थे। उनकी दाढ़ी और बाल रूखे और अस्त-व्यस्त थे। तुमुल हर्षध्वनि को मन्द करने का संकेत करते हुए उन्होंने कहा, "साथियो, अब हमें समाजवादी राज्य की रचना का काम अपने हाथ में लेना चाहिये।"

इसके बाद वे शान्त भाव से ठोस तथ्यों का उल्लेख करने लगे। उनकी वाणी में वक्तृत्वशक्ति की अपेक्षा कठोरता एवं सादगी अधिक थी। वे अपनी बगल के पास वास्केट में अंगूठों को खोंसते हुए एवं एड़ी के बल आगे-पीछे झूलते हुए भाषण दे रहे थे। हम यह पता लगाने की आशा से एक घंटा तक उनका भाषण सुनते रहे कि वह कौन-सी गुप्त सम्मोहन-शक्ति है, जिससे उन्होंने इन स्वतंत्र, युवा एवं दबंग लोगों का मन मोह रखा है। किन्तु यह प्रयास निष्फल सिद्ध हुआ।

हमें निराशा हुई। बोल्शेविकों ने अपने जोश एवं साहसपूर्ण कार्यों से हमारे दिल जीत लिये थे। हमें आशा थी कि इसी प्रकार उनका नेता भी हमें अपनी ओर आकृष्ट कर लेगा। हम चाहते थे कि इस दल का नेता इन गुणों के प्रतीक, सारे आन्दोलन के प्रतीक एक "महा बोल्शेविक" (अतिकाय व्यक्ति) के रूप में हमारे सामने आये। इसके विपरीत, हमने एक "मेन्शेविक" – एक बहुत ही छोटे-से व्यक्ति – को अपने सामने देखा।

अंग्रेज संवाददाता जूलियस वेस्ट ने धीरे-से कहा, "यदि वे थोड़ा भी बने-ठने होते, तो आप उन्हें एक छोटे फ्रांसीसी नगर का पूंजीवादी मेयर अथवा बैंकर समझते।"

उक्त संवाददाता के दोस्त ने भी फुसफुसाकर कहा, "हां, निस्संदेह एक बड़े कार्य के लिए अपेक्षाकृत एक छोटा आदमी।"

हम जानते थे कि बोल्शेविकों ने कितने बड़े काम का बीड़ा उठा रखा था। क्या वे इस महान कार्य को पूरा कर पायेंगे? शुरू में हमें उनका नेता कमजोर लगा। ऐसा था पहली नज़र का प्रभाव। इस प्रकार के प्रथम प्रतिकूल प्रभाव के बावजूद 6 महीने बाद मैंने अपने को भी वोस्कोव, नैबुत, पेटेर्स, वोलोदार्स्की और यानिशेव के शिविर में पाया, जिनकी दृष्टि में निकोलाई लेनिन यूरोप के सर्वोत्कृष्ट व्यक्ति और राज्यदर्शी थे।

(अगले अंक में जारी)

अक्टूबर क्रांति की 82वीं वर्षगांठ के अवसर पर राहुल फाउण्डेशन की नई प्रस्तुति

अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन

सोवियत समाजवादी क्रान्ति की तैयारी से लेकर बाद के दौर तक वहां उपस्थित रहकर युगान्तरकारी घटनाओं के साक्षी रहे अमेरिकी पत्रकार एल्बर्ट रीस विलियम्स की दो दुर्लभ कृतियां :

'रूसी क्रान्ति के दौरान' तथा **'लेनिन : व्यक्तित्व और कार्य'** एक ही जिल्द में हिन्दी पाठकों के लिए विशेष रूप से

साथ ही रीस विलियम्स का परिचय

मूल्य : रु. 75/- (पेपर बैक) रु. 150/- (साजिल्द)

एल्बर्ट रीस विलियम्स की कृतियां क्रान्तिकारी दौर की घटनाओं में उनके असली नायक आम जन समुदाय के कारनामों और सोच को सामने लाती है तथा लेनिन के मानवीय, जीवन्त और प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का प्रामाणिक प्रभावी चित्र प्रस्तुत करती है जिनके साथ उन्हें लम्बे समय तक रहने का अवसर मिला था।

प्राप्त करें :

जनचेतना

डी-68, निराला नगर, लखनऊ-226 020

पंजीयन संख्या - 71980/99 डाक पंजीयन संख्या - LW-NP/349/2000

देख फकीरे...

● मनबहकी लाल

देख फकीरे, ''लोकतंत्र'' का फूहड़ नंगा नाच।

मचा तहलका डॉट कॉम का शोर, गिर गई गाज
हाफपैण्टिये ''आदर्शों'' की पोल खुल गई आज
चोर के पीछे चोर, मोर के पीछे भागें मोर
''पकड़ो-पकड़ो, पकड़ो-पकड़ो'', सभी मचाते शोर।

हिरने बैठे पगुराते हैं, भैंसे भरें कुलांच
देख फकीरे, ''लोकतंत्र'' का फूहड़ नंगा नाच।

संसद और विधानसभा में दल्लों की बारात
मंत्री-संत्री-तंत्री के घर नोटों की बरसात
किसका गिरेबां किसने फाड़ा, किसका दामन चाक
पूंजी के किस टुकड़खोर का चेहरा लगता साफ?

यहां सत्य को झुलस रही है संविधान की आंच
देख फकीरे, ''लोकतंत्र'' का फूहड़ नंगा नाच।

पूंजी के चाकर बतलाते सदाचार के माने
चुगा रहे हैं कातिल मंदिर में चिड़ियों को दाने
हत्या और बलात्कार के अड्डे लगते थाने
हत्यारों की मजलिस में कविजी गाते हैं गाने।

मुठभेड़ों से आंख मूंद ले, पोथी-पतरा बांच
देख फकीरे, लोकतंत्र का फूहड़ नंगा नाच।

उ.प्र. में "रामराज्य" की पुलिस का कत्लेआम

भवानीपुर में बहा लहू धरती में जज्ब नहीं होगा

नक्सलवादियों से मुठभेड़ के नाम पर उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले के भवानीपुर गांव में विगत 19 मार्च को जिस दरिन्दगी के साथ सोलह दलितों-आदिवासियों की पुलिस ने हत्याएं कीं वह भाजपाई रामराज्य के खूनी आतंक की ऐसी कहानी है जो अंग्रेजी राज की बर्बरता को मीलों पीछे छोड़ देती है। पुलिस पार्टी की चेतावनी पर आत्मसमर्पण की मुद्रा में एक घर से बाहर निकल रहे नौजवानों को गोलियों की बौछारों से इस तरह ढेर कर दिया गया जैसे खूंखार जगली जानवरों का शिकार हो रहा हो। हत्यारों ने 12 साल के कल्लू को भी नहीं बख्शा जो अपनी मौसी की शादी में शामिल होने के लिए भवानीपुर आया था। मारे गये दूसरे सभी नौजवान भी इसी शादी में शामिल होने के लिए गांव में जुटे थे।

इस कत्लेआम को पुलिस के अधिकारी और सरकार खूंखार नक्सलवादियों के साथ खूनी मुठभेड़ का नाम दे रही है। इस जघन्य हत्याकाण्ड के तीसरे ही दिन प्रदेश के मुख्यमंत्री राजनाथ सिंह "मुठभेड़ में घायल **"अदम्य साहस का परिचय देने वाले पुलिसकर्मियों"** के स्वास्थ्य की जानकारी लेने मिर्जापुर पहुंच जाते हैं। वह फासिस्टी हेंकड़ी के साथ मुठभेड़ में शामिल पुलिसकर्मियों को सामूहिक रूप से पांच लाख रुपये के पुरस्कार की घोषणा करता है। इसके अलावा वह "घायल" पुलिसकर्मियों को अलग से दो-दो लाख रुपये का पुरस्कार देते हुए **"पुलिस महकमे के पराक्रमी लोगों को संबल प्रदान करने में पीछे न रहने"** की कसम खाता है। "मुठभेड़" में शामिल इन "जांबाजों" को एक **"रैंक प्रमोशन"** देने और **"शौर्य पुरस्कारों"** के लिए इनके नाम की सिफारिश करने की घोषणा भी की जाती है।

जिन हालात में यह कत्लेआम किया गया है उनसे साफ जाहिर है कि मुख्यमंत्री राजनाथ सिंह के इशारे पर यह सुनियोजित ढंग से किया गया है – जिसका मकसद था इलाके में अपने हक, इंसाफ और स्वाभिमान के लिए उठ खड़े हो रहे दलित-आदिवासी ग्रामीण मजदूरों के दिलों में एक ऐसा आतंक राज कायम करना जिससे वे पहले की ही तरह बेजुबान होकर भूस्वामियों-ठेकेदारों के लिए खटते रहें। वारदात के एक हफ्ता पहले ही राजनाथ सिंह मिर्जापुर आकर यह चेतावनी दे गये थे कि "एक के बदले चार को मारा जायेगा"। वारदात के बाद वाराणसी रैंज के डी.आई.डी.एस.सी. गुप्ता दहाड़ते हैं कि "नक्सलियों के खिलाफ यह हमारी महत्वपूर्ण सफलता है। इस कार्रवाई से इस क्षेत्र में उनकी कारगुजारियां हमेशा के लिए थम जायेंगी।"

आखिर मिर्जापुर के इस पिछड़े दलित-आदिवासी बहुल इलाके में ऐसा क्या हो रहा था जिससे राजनाथ सिंह के इशारे पर पुलिस ने यह "पराक्रम" कर दिखाया? घटना के बाद कुछ स्थानीय समाचारपत्रों और पीपुल्स यूनियन फार सिविल लिबर्टीज (पी.यू.सी.एल.) जैसे जनवादी संगठनों की रपटों से यह साफ जाहिर है कि भवानीपुर का कत्लेआम सत्ता-पुलिस और भूस्वामी गंठजोड़ का नतीजा है। भवानीपुर के करीब एक गांव भैंसवार का एक अपराधी प्रवृत्ति का भूस्वामी और तेंदूपत्ता ठेकेदार मुख्यमंत्री राजनाथ सिंह का बेहद करीबी है। इस भूस्वामी ने दलित भूमिहीनों को जमीन देने के नाम पर उनसे हजारों रुपयों की अवैध वसूली कर रखी थी। पिछले कुछ महीनों से इस इलाके में सक्रिय क्रान्तिकारी राजनीतिक कार्यकर्ताओं से मार्गदर्शन पाकर दलित और आदिवासी अपने हक और न्याय के लिएं संगठित होने लगे थे। वे जमीन के एवज में हड़पे गये पैसे वापस देने और तेंदूपत्ता तोड़ाई की मज़दूरी बढ़ाने की मांग करने लगे थे। पुलिस ने जिन लोगों की हत्या की वे सभी इसी इलाके के नौजवान थे जो ज़मीन और मज़दूरी से जुड़े सवालों को लेकर आन्दोलन में सक्रिय थे।

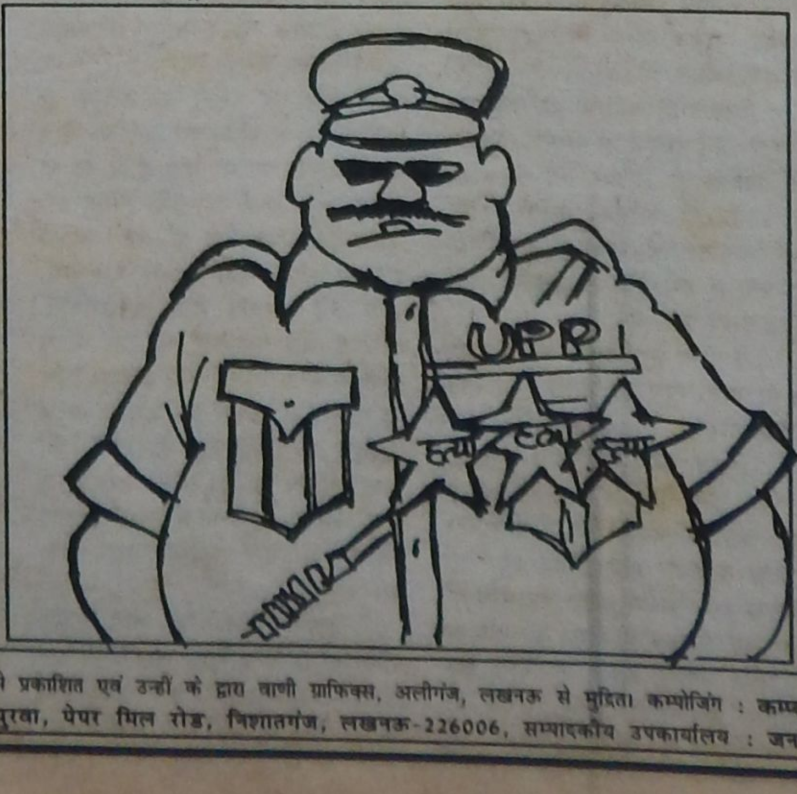

उत्तर प्रदेश से नक्सलवादियों के "सफाया अभियान" में मिली इस "बड़ी सफलता" से पुलिस के उच्चाधिकारी मूंछों पर ताव दे रहे हैं, हत्याकांड में शामिल पुलिसवाले 'प्रमोशन' और शौर्य पदक के इन्तजार में हैं, राजनाथ सिंह हत्यारों की वन्दना के बाद राजधानी लौटकर मुस्कराते हुए फोटू खिंचवा रहे हैं और इन सबकी सरपरस्ती में सभी जालिम भूस्वामी और ठेकेदार चैन की नींद सो रहे हैं। लेकिन हत्यारों की ये जमातें मदहोशी में यह भूल चुकी हैं कि सपनों को कत्ल नहीं किया जा सकता। न्याय के लिए बहा खून धरती में जज्ब नहीं होता। वह रक्त बीज बनकर नये-नये योद्धाओं को जन्म देता है और जोरो-जुल्म के खिलाफ लड़ते रहने के लिए संकल्पों को फौलादी बना जाता है।

– समीर

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
संपादक : डा. दूधनाथ। सम्पादकीय पता : द्वारा ओ.पी. सिन्हा, 69, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006, सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ।